सरल रामायण

प्रो. (डॉ.) नलिनी पुरोहित

सरल रामायण

© प्रो (डॉ) नलिनी पुरोहित

ISBN - 978-93-85490-18-7

प्रथम आवृत्ति
अगस्त, २०१७

मूल्य – रुपये
२५०.००

आवरण
श्रीमति मनीषा यादव (स्वीरा), फ्रांस

प्रकाशक
जाहनवी प्रकाशन
गांधीनगर-३८२ ००६, गुजरात. (मो) ९४२६०६०६०१

वितरक

(।) गुजरात पुस्तकालय सहायक सहकारी मंडल लि.
संस्था वसाहत, रावपुरा, वडोदरा (गुजरात)
फोन : (०२६५) २४२२९१६

(।।) दिव्या पब्लिकेशन
४५, प्रेरणा पार्क, नीलेश पार्क के पास,
जशोदानगर रोड, मणीनगर पूर्व,
अहमदावाद. फोन : (०७९) २५५०६९७३

(।।।) रंग प्रकाशन, ३३, बख्शी गली, राजबाडा, इन्दौर (म.प्र.)-४५२००४
मो. : ०९४२५३१८७८७ फोन : ०७३१ – २५३८७८७

मुद्रक
गायत्री ओफसेट
१६, द्वारकाधीश चेम्बर,
सरदार मार्केट के सामने,
केवड़ाबाग, वडोदरा.

डॉ. नलिनी पुरोहित
अे/८१, राधाकृष्ण पार्क,
अकोटा, वडोदरा-३९००२०
फोन :- (०२६५) २३४४८०२
मो. :- ९८२५५ ७८८२९

समर्पण

समर्पित.... उस नारी को

अवगत कराया जिसने
संसार, मानव, भगवान के रूप को
जीवन के मूल्यों संग
सहज जी जाने के मर्म को
कांटों में छिपे फूल की महत्ता स्वीकार
कंकरीला पथ सुगम करने को
श्रम-धैर्य-प्रेम के तेल से संस्कारों की लौ
प्रज्ज्वलित कर जीवन सफल करने को

सान्निध्य में था जिसके जीवन्त पल का पिटारा
रहता जिसमें सदा आशीर्वाद तुम्हारा
तुम्हारी अनुकम्पा से अब तक पहुँची मैं यहाँ
वो नारी . . . . . तुम ही मेरी **"श्रद्धेय माँ !"**

नलिनी

दो शब्द

जीवन सीढ़ी चढ़ने का नाम है, और एक अवस्था प्राप्त कर उसी पथ से उतर जीवन की सच्चाई समझ, खुद को पहचान, पंचभूत का स्वागत करने का नाम है । इसी चढ़ाई-उतराई में धर्मग्रंथों, उपदेशों, उपदेशकों, विचारकों, संतों का बहुत बड़ा हाथ रहा है । भटकना मनुष्य का स्वभाव है, किन्तु सही समय, सही हाथ का साथ उसकी डूबती नैया का खेवनहार है । परिवर्तन ही जीवन है, परिवर्तन अवश्यंभावी है, परिवर्तन के साथ धर्म की आस्था, उससे जुड़े रहना, आधुनिक युग में हमारा संबल बन जाता है । आज के इस वैज्ञानिक युग में अति आधुनिक उपकरणों की चकाचौंध में, जीवन सहज किन्तु भावना रहित हो गया है । रिश्तो की सुगंध, सहृदयता की महक, उस चकाचौंध में दब, किताब के पन्नों का रूप ले पुस्कालय की बंद अलमारियों तक सीमित रह गयी है । युवा वर्ग जीवन के कंकरीले पथ से कंकड़ हटाने के बजाय आधुनिक उपकरणों को सेतु बना, उसे पार करना जीवन का लक्ष्य मान रही है, फलस्वरूप यह बहुमूल्य जीवन सिर्फ आधुनिक उपकरणों की होड़ में व्यस्त है, जितने ज्यादा उपकरण उतनी ही शांति की मृगतृष्णा के मोहजाल में फंसते चले जा रहे हैं । जाने-अनजाने जीवन की कठोर सच्चाई पर परदा गिराते, उसे सुगम बनाने की चाह में, युवा मन भ्रमित हो अपनी जड़ों से दूर हुए जा रहा है । ऐसे में धर्म की आस्था, उसकी अपनी पहचान बनाए रखने में संबल का रूप बन, उसके आत्मविश्वास में नयी चेतना जागृत कर सकती है ।

आज की भागमभाग भरी जिंदगी में हमें अपने धर्म, धर्मग्रंथ पर आस्था तो है, पर समझने का समय नहीं, मान तो है पर मर्म जानने का अवसर नही । हमें व्यावहारिक ज्ञान तो है पर आध्यात्मिक विद्या नहीं, वैज्ञानिक निदान तो है पर आत्मिक संतोष नहीं । हर घर में रामायण-गीता तो है पर पढ़कर समझने का वक्त नहीं, इसलिए चांद, मंगल उपग्रहों पर जाने

के बाद भी हममें आन्तरिक संतोष नहीं । और यह सही भी है, आज के इस परिवर्तित युग ने हमें मानव की मानवता से दूर कर मानो पंचभूत तत्त्वों को ही बदल दिया है । उसकी वास्तविकता छोड़ लोभ, स्वार्थ, अहंकार, क्रोध, प्रतिस्पर्धा को ही पंचभूत मान बैठे हैं ।

ऐसे में हमारी युवा प्रजा अनजाने ही अपने आध्यात्मिक खजाने के सच्चे हीरे को छोड़ कृत्रिम चकाचौंध रूपी पत्थर को हीरा मान बैठी है, तो क्या ये उनकी गलती है ? इसके लिए माता-पिता, अभिभावक, व्यस्त प्रजा, जिम्मेदार नागरिक उत्तरदायी नहीं ? हमारे धर्मग्रंथों, पौराणिक कथाओं में जीवन के हर मूल्य के दर्शन हैं, उसे समझने की सारी प्रक्रिया है । पारिवारिक सद्‌भाव, सामाजिक सहृदयता, राष्ट्रीय एकता की सुगंधित वाटिका है, किन्तु उसे व्यवहार में ला, जीवन दिशा बदलने का भरपूर ज्ञान नहीं । हम अपने धर्मग्रंथों की पवित्रता को ध्यान में रखते हुए बड़े-बड़े शुभ अवसरों पर भगवान के श्री चरणों में ज्ञान का रसपान कर अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं । रोजमर्रा की व्यस्तताओं में समयाभाव बहुत हद तक सही भी है, किन्तु कभी-कभी भाषा की क्लिष्टता उसे दुर्बोध बना देती है । इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ कि यदि सम्पूर्ण रामायण सीधे-सरल शब्दों में अपने युवावर्ग के समक्ष रखूँ, तो वो ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ, युवाओं के दिल में उसे पढ़ने, जानने, समझने की ललक पैदा कर सकेगा । यदि वह जीवन मूल्यों का समाधान रामायण में हर पात्रों के माध्यम से कर सकेगा, तो मेरा यह प्रयास सार्थक होगा ।

इसे पूर्ण करने में अपने परिवार के सभी सदस्य खासकर पति श्री विजय पुरोहित, पुत्र निखिल, भाई श्री धीरेन्द्र एवं भाभी श्रीमती साधना की मैं विशेष आभारी हूँ । और जिनके अनुकम्पा, आशीर्वाद ने मेरी लेखनी में आत्मविश्वास जगा, सदा ही मुझे उत्साहित किया वैसी मेरी पूजनीय माता जी को, जिसने एक पुत्री के भाग्य को, अपनी ममता की छांव से सौभाग्य में परिवर्तित कर दिया ।

नलिनी पुरोहित

॥ श्री राम ॥

बहन श्री नलिनी पुरोहित

सरल और सरस रामायण का

आप सरल रामायण के रूप में

प्रस्तुत करने जा रहे हैं। मैं

इस प्रकाशन का स्वागत करता हूं।

तुलसी आदि सब महान पुरुष...

महर्षि से वाल्मीकि तक सब कोई आचार्यों

ने अपनी शक्ति-मति-गति अनुसार

उसका गान करते हैं। उसी तरह रामायण

गान में भी सब अपने भावानुकूल उसका

गान करते रहते हैं। बाकी तो कुछ सब

जानते हैं - "हरि अनंत हरि कथा अनंता"

आपके प्रशंसनीय प्रयास के लिए मेरी

बहुत ही प्रसन्नता!

प्रभु प्रार्थना - और राम कीर्तन

की सदा!

12-5-2017

परम् पूज्य मोरारी बापू का आर्शीवाद

।। राम ।।

बहनश्री नलिनी पुरोहित

सबल और सजल रामायण को आप '' **सरल रामायण** '' के रुप में प्रस्तुत करने जा रही हैं । मैं इस प्रयास का स्वागत करता हूँ।

तुम हीं आदी खग मसफ प्रजंता ....। मच्छर से गरुड़ तक सब कोई आकाश में अपनी शक्ति-मति-गति अनुसार उड़ान भरते हैं । उसी तरह रामायण नभ में भी सब अपनें भावानुकुल उड़ान करते रहते हैं । बाकी तो हम सब जानते हैं -''हरि-अनंत ..... हरि कथा अनंता..... ''

आपके प्रसादीय प्रयास के लिए मेरी बहुत ही प्रसन्नता ! प्रभु प्रार्थना और राम सुमिरन के साथ-

मोरारी बापू

12-05-2017

ॐ

हैं ये पंक्तियाँ समर्पित हजारों साल बाद भी रहे राममय भक्तों को
शील- प्रेम- त्याग- मर्यादा के जीवन्त उदाहरणों को
समर्पण के सागर में वर्षों से तैरता एक अखंड नाद को
जिसकी वाणी ने कलयुग में भी किया गुंजित रामायण,उस शाश्वत सत्य को ।

है यह कथा रधुवंश की, राजा दिलीप के वंशज की
दिलीप पुत्र रघु, उनके पुत्र अज एवं पुत्रवधु इन्दुमती की
जन्मे जिनसे सुपुत्र दशरथ, कथा है उनकी वचनबद्धता की
बाल्मीकि की मर्यादा, तुलसी की नीति से बंधे, दशरथ नन्दन श्री राम की ।

महाराजा दशरथ, कोशल्या, कैकयी, सुमित्रा

सरल रामायण

(1) सरयू तट बसी थी एक सुन्दर अयोध्या नगरी
थे जिसके राजा धर्मशील, कर्मशील और प्रतापी
नाम था दशरथ जो थे वीर, पराक्रमी और संयमी
शांति की छाँव में प्रजा थी आनंदित, सुखी,वैभवी ।

(2) थी जिनकी तीन - तीन सुन्दर कोमल रानियाँ
ज्येष्ठा कौशल्या , सबसे छोटी थी सुमित्रा
मध्य में थी अपूर्व रूपवती कैकेयी, मोहक प्रियंवदा
बुद्धिशील कैकेयी,खास थी राजा की इसलिए सर्वदा ।

(3) कौशल्या में था समर्पण नारीत्व का
उफनती नदी सी यौवना थी सुमित्रा
समस्त ब्रह्मांड में शायद ही कोई हो दूजा
वैसा रूप था, महाराजा प्रेयसी कैकेयी का ।

(4) चहूँ ओर थी खुशहाली पर महाराजा थे सूने अधूरे
निरवंश की चिन्ता में रहते थे वे खोए-खोए
भांपा वशिष्ठ ने , क्यों हो रहे थे वे आधे
पुत्रेष्टि यज्ञ समझा , पंख आशाओं के बांधे ।

(5) भावी युवराज का स्वप्न, मन ही मन संजोते
प्रसन्नता के झूले में , भावनाओं संग झूमते
सब रानियों को बुलाया एक साथ राजा ने
मुनि वशिष्ठ के यज्ञ का सार बताया दशरथ ने ।

(6) रानियों के हृदय में असीम खुशियों की लहर थी बसी
हुए भाव विभोर महाराजा, भावी पुत्र की आशा बंधी
होम-हवन संग हुई यज्ञ की रचना,आमंत्रण से प्रारंभिक तैयारी
हुए निमंत्रित ऋषि, मुनि, देवता, गंधर्व, पवित्र हुई नगरी सारी ।

(7) उन दिनों पृथ्वी लोक में था आतंक राक्षसों का वन में
विघ्न डालते थे वे ऋषि मुनि के तप हवन में
जिसके लिए चिन्तित थे यक्ष-गन्धर्व, देवता तीनों लोक में
रखी गयी थी एक सभा, इसी विषय पर इन्द्रलोक में ।

(8) थी एक लंकानगरी, राजा जिसका था रावण महा अभिमानी
था तो वो वीर, शिवभक्त किंतु अत्यन्त अहंकारी
साथ में थी उसके राक्षसों की सेना, क्रूर- संहारी
इसलिए ऋषि मुनि के पूजन में होती अवरोधों की पारी ।

(9) अहंकार के वशीभूत, क्रूरता की चरम सीमा पर रहता था वो
पूजा में विघ्न डाल, खुद को ही भगवान कहता था वो
अपना सर काट, कठिन तप कर,ब्रह्मा के वर से सुशोभित था वो
था वरदान, सिवाय नर या वानर के,मारा नहीं जा सकता था वो ।

महाराजा एवं तीनों रानियाँ
(खीर वितरण)

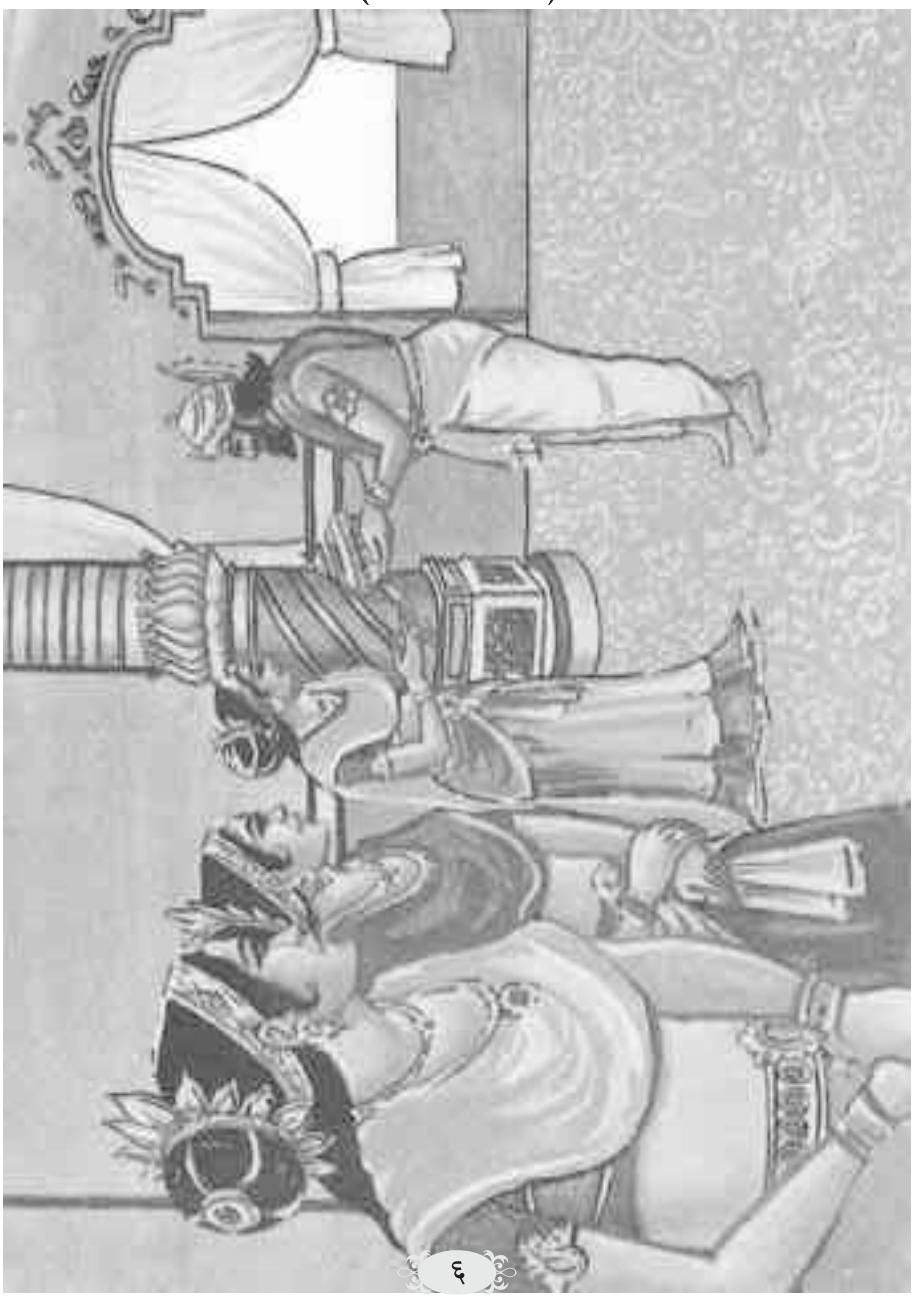

(10) हुई इन्द्रलोक में सभा, मुद्दा था मानव-ऋषि-मुनि की रक्षा का
किया निवेदन सबने विष्णु से इस विषम घड़ी से उबरने का
निर्णय हुआ भगवान स्वंय अवतरित होंगे, ले रूप मानव का
निश्चित हुई नगरी अयोध्या एवं स्वरूप दशरथ नन्दन का ।

(11) समस्त देवताओं ने मिल कामधेनु गाय के दूध से
बनायी स्वादिष्ट खीर, मीठा रस बना जिसमें ईख से
भेजा पृथ्वीलोक, स्थापित हुए प्रभु के अंश इसमें
बांट कर खाया तीनों रानियों ने, ये प्रसाद बड़े प्रेम से ।

(12) खीर का पहला भाग कौशल्या,दूजा कैकयी, तीजा सुमित्रा ने खाया
बचे खीर का चौथा भाग, बड़ी रानी ने प्रेम से छोटी को खिलाया
तीनों रानियों ने पुत्र जने, रघुकुल वंश समय पर उदित हुआ
कौशल्या-कैकयी ने एक रत्न,सुमित्रा ने दो रत्नों को कुल से जोड़ा ।

महाराजा दशरथ नवजात राजपुत्रों के साथ

(13) महाराजा दशरथ हो आनन्द विभोर, स्वीकार रहे थे बधाई
चारों कुवरों के आगमन ने, रघुकुल गौरव की ज्योत जलाई
कैकयी पुत्र थे भरत, कौशल्ये पुत्र राम थे बड़े भाई
सुमित्रा के दोनों पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे छोटे भाई ।

(14) दान-पुण्य संग, बंटी मिठाइयाँ घर- घर में नगर के चहूँ ओर
अंग-वस्त्र, भोजन संग अशर्फी, स्वर्ण मुद्राओं का भी था जोर
सुन्दर लुभावने चारों कुंवर, किलकारियों से महल में गूंजा शोर
पिता आनन्दित, बलाइयाँ लेती माताएँ, खुशियों का न था कोई छोर ।

(15) महाराजा की थी बात निराली , प्राण बसे थे उनके राम में
तन के रक्तबून्द सा शत्रुघ्न, लक्ष्मण धड़कन, भरत थी उनकी सांसें
अवध आनंदित, माताएँ पुलकित, खुशियों की भोर से होती थी बातें
तिमिर का कहीं स्थान नहीं, विस्मय ! कैसे दिन वगैर रातें !

दशरथ पुत्रों की बाल्य अवस्था

(16) देखते-देखते हुए चारों कुंवर जवां, होने लगी दूर बचपन की हवा
मुनि वशिष्ठ की छत्र-छाया में, पाने लगे चारों पुत्र ,शस्त्र एवं विद्या
वेद-नीति- व्याकरण से लेकर धनुर्वेद की शुरू हुई दिनचर्या
पिता रोमांचित, माताएं हर्षित,गौरवान्वित गुरु देख शिष्यों की साधना ।

(17) थे अव्वल चारों पुत्र हर क्षेत्र में, राम थे अद्वितीय धनुर्वेद में
देख उनकी प्रतिभा, राजमंत्री सुमंत बोले महाराज से
होनहार है राम ज्ञानवान- गुणवान, लोकाभिराम रघुवंश में
ऐसे आन्वीक्षिकी विद्यापारंगक को बांध दे विवाह सूत्र में ।

(18) चर्चा मध्य आ पहुँचे मुनि विश्वामित्र भरी सभा में
आवभगत, सत्कार किया महाराज ने दौड़-दौड़ विनय से
कर नमन-वन्दन कुशल क्षेम, पूछा आने का प्रयोजन प्रेम से
बोले मुनिवर, डाले राक्षस विघ्न, हवन-पूजन हर विधान में ।

यज्ञ में विघ्न करते हुए राक्षस

(19) खुश हो बोले दशरथ, कितने सैनिक भेजूं ,करने आपकी सहायता
या आऊँ मैं खुद रक्षण को , जैसी भी हो आपकी आज्ञा
न सैनिक न आपका श्रेय, चाहिए मुझे सिर्फ पुत्र राम आपका
करेगा वो हमारी, हमारे तप की रक्षा, पूर्ण होगी तब हमारी तपस्या ।

(20) स्तब्ध राजा हैरान, ये क्या कह डाला मुनिवर आप ने
है बालक पुत्र मेरा, राक्षस तक न देखे अभी तक इसने
वनों का कठिन जीवन न देखा न जाना मेरे दुलारे राम ने
मैं सेना संग करूँगा रक्षा, न होगा विघ्न ऋषियों के तप में ।

(21) हो गंभीर विश्वामित्र बोले , इसमें अहित न होगा राम का
कर रक्षा मेरे यज्ञ की, ख्याति मिलेगी बनेगा और वीर, पुत्र आपका
सारी शस्त्र विद्या मुझसे सीख,सुनियोजित धनुर्धारी वीर होगा वो सर्वदा
सीखे राक्षसों से लड़ने की युक्ति, शिरोमणी वीर होगा राम सदा ।

राम - लक्ष्मण, विश्वामित्र

(22) जिनकी आज्ञा से, बलशाली राक्षस भेजे जाते, वो है अहंकारी रावण
जो सिर्फ क्रूर शक्ति ही नहीं, बुराइयों की पूरी खान है रावण
मिटा नहीं सकती उसे कोई सैन्य शक्ति, या आपकी आन-बान
उसे झुका कर गिरा सकता है , सिर्फ आपके ही पुत्र का वाण ।

(23) सारी बातें सुन, वशिष्ट मुनि ने भी दिया साथ विश्वामित्र का
बोले, माता-पिता की तरह बालकों पर विशेष प्रेम होता है गुरु का
किन्तु राक्षसों की गोद में कैसे डालूँ, एक कातर पिता हृदय बोला
कैसे झोकूं हृदय के टुकड़े को आग में, आहत पिता फिर से रोया ।

(24) समझाया दोनों मुनियो ने, नहीं है यह सिर्फ पुत्र तुम्हारा
संतान प्रेम में डूब, न करो आप इसका सीमित दायरा
बुराइयों का नाश , यज्ञ पूर्ण करने का है यही सहारा
व्यापकता संग बसेगा जन-जन में बलशाली पुत्र राम तुम्हारा ।

(25) अंत में स्वयं राम ने, पिता समक्ष आ, आशीर्वाद मांगा वन जाने को
मुनिश्रेष्ठ वशिष्ट ने, लक्ष्मण को भी दी आज्ञा, भाई संग जाने को
सोचा रहेंगे जो दोनों साथ, दूर करेंगे एक दूजे के एकाकीपन को
मुनि के संरक्षण पर आश्वस्त,दी आज्ञा पिता ने जिगर के टुकड़ों को ।

(26) चल पड़े दोनों राजकुमार विश्वामित्र संग सघन वन में
ऋषि संग जंगल देखते, मनोहारी वन, मिलते तपोवन राह में
जीवन का सही अर्थ, नहीं है निरन्तर सुख भोगने में
बोले ऋषिवर, मिलता है कठिनाइयों और संघर्ष के भी तप में ।

(27) हुई सफर की समाप्ति, पहुँचे ऋषि के तपोवन दोनों भाई
शांत चित हो आरंभ किया हवन, इतने में ताड़का राक्षसी आई
आयी थी विघ्न डालने, किंतु मुनि की निश्चिंतता देख हंसी न रोक पाई
पास दो बालक खड़े देख, अट्टहास कर बोली,ये हिम्मत तुमने इनसे पाई !

(28) बोली ये तो हैं सुकुमार बालक, खाऊँगी इन्हें मैं बाद में
पहले निपटूं यज्ञ से, डालने लगी मांस के लोथड़े वेदी में
रुक जा राक्षसी ताड़का, तीर उठा राम बोले क्रोध में
तीर छूटा, धूल-धूसरित आकाश, ताड़का को मारा पल में

(29) पहले तीर से उड़ा शरीर,दूजे से गिरा पृथ्वी पर छोड़ आकाश
जलता शरीर देख ताड़का का, अब हुए विश्वामित्र आश्वस्त
हो तुम अजेय बोले मुनिवर, होगे शेष विद्या में भी पारंगत
सिखा सारी विद्या,करूँगा मंतव्य पूर्ण ,है मेरा अटल विश्वास ।

(30) तभी आँधी की तरह, धूल ही धूल दिखी उस दिशा में
मानो आया हो प्रलय, आकाश भी हुआ गुम क्षण में
हैं ये ताड़का पुत्र , मारीच और सुबाहु, कहा विश्वामित्र ने
माता की मृत्यु से क्रोधित, सेना ले आया है तुमसे लड़ने ।

ताडका वध

मारीच - सुबाहु युद्ध

(31) पल भर में निकाल वाण, राम ने की अग्नि वर्षा
भागे दोनों राक्षस हुए निश्चिन्त मुनि, पूर्ण हुई तपस्या
संतोष मिला राम-लक्ष्मण को, कर ऋषिवर की सहायता
अभी भी अपूर्ण थी, मुनि द्वारा देने को उनकी शिक्षा ।

(32) जाएंगे फिर यात्रा पर, आनन्दित हो विश्वामित्र बोले
बदलेगा शिक्षा का दृष्टिकोण नई जगह साक्षात्कार करके
चले दोनों कुमार, प्राकृतिक सौन्दर्य निहारते,ऋषि संग वन में
देख सरयू से बड़ी नदी,लक्ष्मण बच्चा बन विशालता में रीझे ।

(33) हिमालय की पुत्री, पार्वती की बहन है यह चंचल पवित्रा
कहा विश्वामित्र ने, है यह महान भगवती समान पवित्र गंगा
हुई अवतरित पृथ्वी पर करने को शांत ,जन जन की तृष्णा
जान नतमस्तक हुए दोनों भाई, किया प्रणाम, हुए पार ले नौका ।

गंगा मैया

(34) थे आश्वस्त विश्वामित्र, विविध विधाओं से दिला राम को विद्या
कहा, एक है इच्छा बाकी , समय आने पर पूर्ण करना
जिज्ञासु राम ने दिखायी, उसे पूर्ण करने की तत्परता
अनुभवी ऋषि की थी युक्ति, सही समय पर मिलती सफलता ।

(35) है रावण , अत्यन्त अभिमानी, ईर्ष्यालु, अहंकारी राजा
तीनों लोकों का अधिकार प्राप्त कर, एकाधिपत्य करना चाहता
भंग कर देता तप- तपस्या जो भी उससे ज्यादा करता
ईश्वरता पाने को छीन अधिकार, खुद भगवान बनना चाहता ।

(36) बोले विश्वामित्र, मुझमें भी है क्षत्रियगुण, चाहूँ तो उसे मार सकता
किन्तु महषि बन , अस्त्र चलाना नहीं मुझे है शोभा देता
कंद मूल खाते, शिक्षा-विद्या की सेज सजाते, हो रही थी उनकी यात्रा
संवादों में विश्राम पाते, मुनि संग पहुँचे दोनों भाई राज्य विशाला ।

अहिल्या देवी उद्धार

(37) विशाला राजा सुमति का आतिथ्य स्वीकार, पहुँचे ऐसे आश्रम में
जहाँ तप कर पत्थर बनी, गौतम पत्नी अहिल्या इन्द्र के छल में
था गौतम ऋषि का भव्य कुंज ,जहां सैकड़ो शिष्य शिक्षा ग्रहण करते
साथ देती त्रिभुवन सुन्दरी अहिल्या, इस शिक्षा को सही रूप देने में ।

(38) एक दिन स्वयं इन्द्र देव शिक्षा ग्रहण करने यहाँ आए
देख अद्वितीय रूप अहिल्या का , मन वेग रोक न पाए
कुशलता से धर रूप गौतम का, पहुँचे अहिल्या के द्वारे
छला मासूम को, तोड़ी मर्यादा, समाज ने लांछन लगाए ।

(39) न था दोष मासूम अहिल्या का, न ही ऋषि गौतम का
किन्तु लोगों की उठती उँगलियाँ ! कौन रोक सकता था भला !
स्वामी की प्रतिष्ठा खातिर, अहिल्या ने एकांत वास स्वीकारा
पत्थर बन गयी सुन्दरी, तप से उठी ऐसी प्रज्ज्वल ज्वाला ।

(40) प्रवेशे राम-लखन, विश्वामित्र संग, उसी गौतम मुनि की धरा में
जहाँ धूप-वर्षा शीत सहती, बुत बनी थी अहित्या उस आश्रम में
हुई पवित्र कुटिया, प्रणाम किया माता को, दोनों भाइयों ने
पुतः चेतना लौटी, वर्षों से बुत बनी समाज तिरस्कृत अहिल्या में ।

(41) निर्दोष माता को, पुत्र दशानन्द जो थे मिथिला के बड़े आचार्य
चाह कर भी दिला न पाए थे, जनेता को सामाजिक स्वीकार्य
राम ने कर नारी सम्मान,दी सामाजिक स्वीकृति,किया अद्‌भुत कार्य
सहनशील माता को परिवार दे, किया उसके जीवन का उद्धार ।

(42) स्वीकार राजा जनक का आमंत्रण,मुनि संग दोनों कुमार पहुँचे मिथिला में
परिचय पा किया प्रणाम,भाइयों ने राजा जनक एवं शतानन्द को आदर से
कृतज्ञ शतानन्द, उपेक्षित माता को उचित मान जो दिया था राम ने
इससे बढ़कर कोई भी सम्मान,एक पुत्र के लिए नहीं था इस जगत में ।

(43) शतानन्द ने अवधकुमारो को सुनायी, विश्वामित्र के क्षत्रिय होने की कथा
विस्मित दोनों कुमार, जान ऋषिवर थे अभिमानी, वीर , क्षत्रिय राजा
उनकी यात्रा राजा से ब्रह्मऋषि तक बनने में,आश्चर्य सहित सम्मान था
पाकर इस पदवी को, विश्वामित्र ने एक राजा का अहंकार जीता था ।

(44) मिथिला नरेश जनक कर रहे थे भव्य तैयारी यज्ञ की
ऋषि, मुनि, विद्वान, ब्राह्मण, मिथिलावासी संग अनुष्ठान की
आनन्दित जनक पाकर ब्रह्मऋषि मुनिवर विश्वामित्र की उपस्थिति
किंतु नयन थे आतुर करने दर्शन, मुनि संग आए सुन्दर कुमारों की ।

(45) जिधर देखो, वहाँ चर्चा थी रूपवान दो अवध कुमारों की
सुन्दर, अद्वितीय, पराक्रमी, मनमोहक दोनो भाइयों की
व्याकुल जनक पत्नी सुनयना, पाने झलक राजकुवरों की
राजा स्वपनिल , बना रहे थे रामसंग जोड़ी अपनी कन्या की ।

भूमि पुत्री - वैदेही

(46) काश वरण करे ज्येष्ठ पुत्र राम, मेरी सीता को सोचा जनक ने
जब है इतना होनहार, शंका नहीं शिवजी का धनुष तोड़ने में
अपनी प्राण प्रिय लाडली के लिए सतर्क थे जनक वर्षों से
देख राम को हुए आशान्वित-हर्षित, बेटी के अर्पण की आस से ।

(47) गुरुसंग दोनों मिले जनक से, हुई बात शिवधनुष , सीता स्वयंवर की
बोले जनक राजयज्ञ दौरान, हल जोतते मिली, उन्हें यह अद्‌भुत कृति
धरती की गोद में अखंड रूप संजोए हुए थी वो भूमि पुत्री
वही अयोनिजा बनी सीता, विवाह शर्त मैं ने रखी, धनुष तोड़ने की ।

(48) इधर मिले सीता-राम पुष्प वाटिका में, बना मनोहर सेतु दोनों के मध्य में
देखते ही सीता थी राममय, राम अलौकिक मुग्धता की विवशता में
वृक्ष पंक्षी फूल देखने के बहाने बह रहा था प्रेम , आनन्द की दिशा में
बिन वाणी के चार नयन अपलक, मानो वर्षों को बांध रहे थे पल में ।

सीता - स्व्यंवर

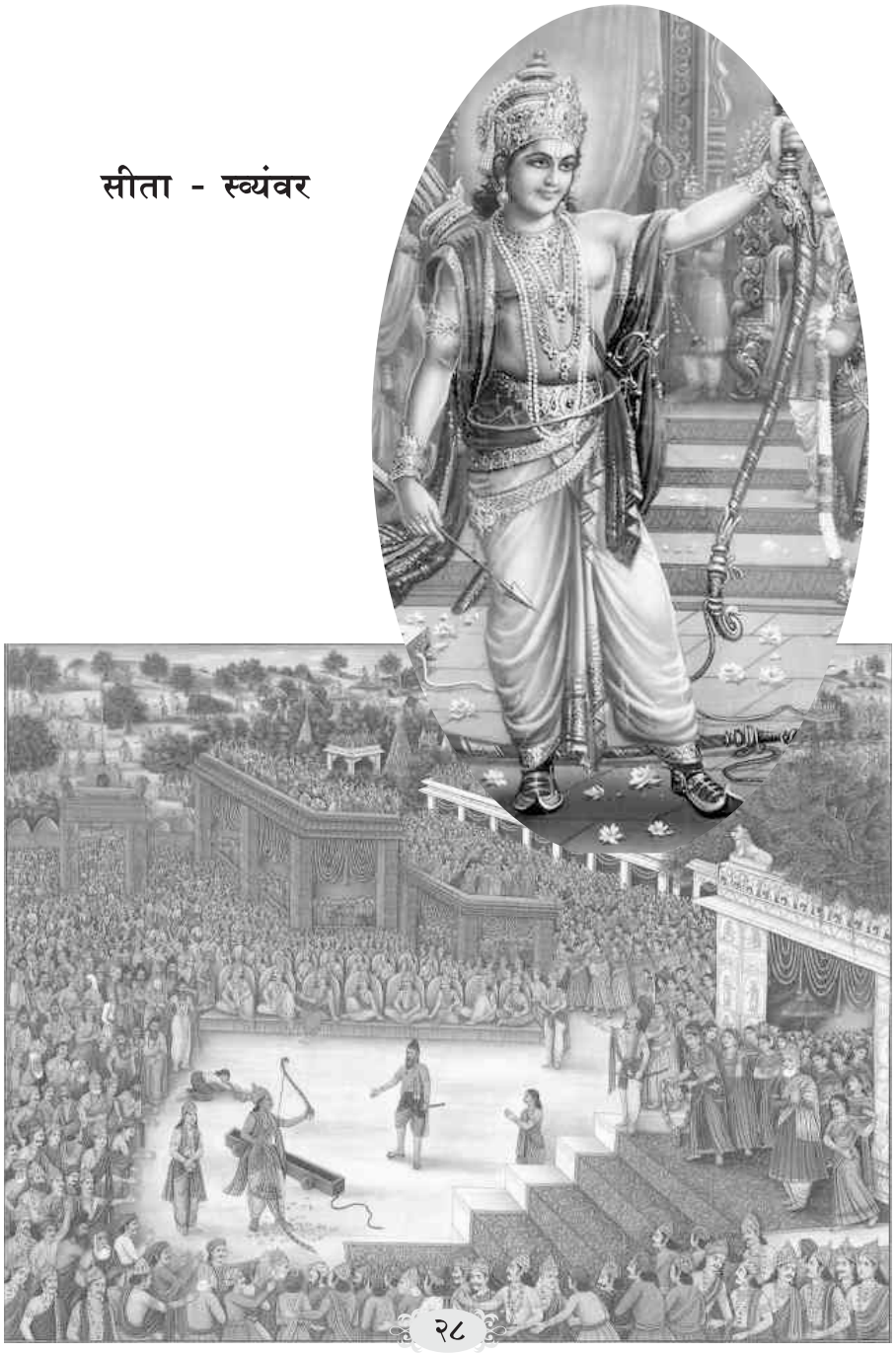

(49) दूजे दिन था धनुष यज्ञ एवं स्वयंवर जनक नन्दिनी सीता का
था अद्‌भुत इतिहास दैत्यों के विनाश हेतु निर्मित उस भारी धनुष का
राजा जनक के पूर्वज थे इसके रक्षक, जो विश्वकर्मा द्वारा रचित था
मुश्किल था जिसे खिसकाना , खेल खेल में सीता ने उठाया था ।

(50) हुआ शुरू स्वयंवर, आमंत्रित थे बड़े-बड़े राजा, बलवान, शूर-वीर
जिसकी प्रत्यंचा पर स्वयंवर था रचा, हिला न पाया उसे कोई वीर
निष्फलों की श्रृंखला में थे लंकेश भी, खुद को माने जो जगतवीर
हुए क्षुब्ध जनक, सोच न होगी पूर्ण प्रतिज्ञा, बचा नहीं कोई वीर ।

(51) सुन क्रोधित हुए लक्ष्मण, तोड़ सकते हैं धनुष, हम इसी पल में
गुरुदेव के इशारे पर वन्दन कर आए राम , पास शिवधनुष के
चढ़ाया प्रत्यंचा धनुष का,हिला न पाया जिसे कोई,पल में तोड़ा राम ने
हर्ष विभोर राजा जनक, देख टुकड़े धनुष के, दिया हश्र जिसे राम ने ।

परशुराम का क्रोध

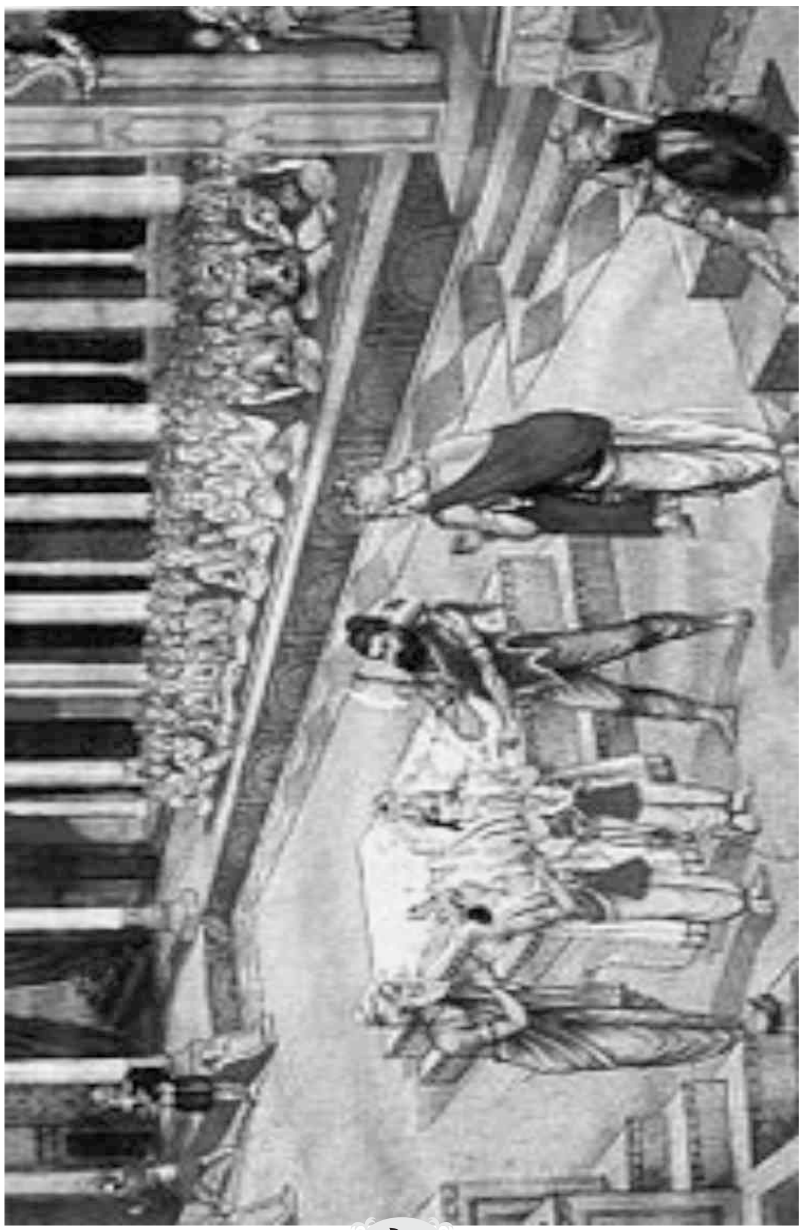

(52) धनुष टूटते ही मचा सीता के हृदय में आनन्द का महासागर
मानो मृणालिनी ने चन्द्र को जयमाला पहनायी हो जाकर
सखियों के मंगलगीत से आनन्द, सरगम संग प्रसरा पूरे महल पर
देवताओं, किन्नरों-गंधर्वों का मिला आशीर्वाद जयजयकार बन कर ।

(53) नहीं था यह मिलन सामान्य, था यह संगम मानो धरती और आकाश
सुन्दरम- सत्यम का मिलन ओत- प्रोत लिए शिवम का साथ
मानो माधुर्य्य -सामर्थ्य चले संग-संग , मिला एक दूजे का हाथ
हुई धारिणी पुत्री पुरुषोत्तम राम की, सब पुलकित, बहा प्रेम राग ।

(54) तभी आए परशुराम,सभी ऋषिगण-जनक का अभिवादन स्वीकार कर एक साथ
देख टूटा धनुष, क्रोधित हो बोले, जिसने किया, करूँगा उसका सर्वनाश
सुन न सके लक्ष्मण उनके तीखे वाण, सामने आ खड़े हुए बेधड़क सीना तान
विश्वामित्र से सुन अवधकुमार की कथा, नहीं थे संतुष्ट, फिर भी हुए वे शान्त ।

राम - सीता विवाह प्रसंग

(55) बोले वे दो धनुष थे एक जैसे,विष्णु एवं शिव के पास, शिव धनुष था यहाँ
प्रलय के डर से विष्णु का धनुष, मेरे पितामह बाद था वो मुझे मिला
इसलिए जानना चाहता, गर हो तुम वही राम, इसे उठा , दो पुनः परीक्षा
बोले वशिष्ट उठा लो राम, वरन यही धनुष काफी है करने पृथ्वी का विनाश ।

(56) मुनि वशिष्ट के इशारे से, पुनः उठे राम दूसरी बार चढ़ाई धनुष की प्रत्यंचा
प्रश्न हुआ कहाँ छोड़ा जाए इसे, कैसे होगी अब समस्त लोक की रक्षा
मान अपनी गल्ती बोले परशुराम, है ये मेरा किया धरा,क्रोध में मैं था अंधा
है यह मेरे हठ का परिणाम, न पहचाना राम को, मांगता हूँ मैं तुमसे क्षमा ।

(57) चढ़ा हुआ तीर अब छोड़ना भी था ,पूरे संसार को बचाना भी था
बोले परशुराम, रोक दो मेरे स्वर्ग जाने की गति, गल्तियों को मुझे ही है भुगतना
जाति के अभिभूत संहारे कई क्षत्रिय क्रोध की अग्नि से, था मैं ब्राह्मण कितना
सरल विनीत बोले राम,जातिवाद संग नहीं देख सकता कोई देश, प्रगति का सपना ।

(58) आप थे कुरीति विरोधी , नहीं थे जातिवादी बोले व्यवहारकुशल राम
जब भी फैलेगा जातिवाद , मारेगा उसे कोई न कोई परशुराम
रोका है स्वर्ग जाने से, राष्ट्र एकता में जातिवाद खिलाफ सर्वदा रहेंगे आप
जातिवाद की जड़ें, अपने परशु से काट, सदा रहेंगे पृथ्वीलोक में, बोले राम ।

(59) गगन में नाचते पंक्षी, उपवन में गुनगनाते भौंरे, राजसभा में जयजयकार
आमंत्रित अतिथिगण समक्ष वैदेही ने राम के गले में वरमाला डाल
किया हर्षित राजसभा को, दौड़े शुभसंदेश देने अयोध्या, जनक के दूत खास
अब तो अयोध्या भी जगमगा उठी, स्वयंवर बाद शादी की घोषणा के साथ ।

(60) जोर शोर से हुई अवध-मिथिला में दोनों पात्रों की शादी की तैयारी
कहीं बारात जाने की, कहीं उसे ठहराने की व्यवस्था सारी
और संभावित दिन पहुँची बारात मिथिला, ले अवधवासियों की सवारी
मानव तो क्या, गण-देवता मुनि ऋषिगण मध्य चहूँ ओर थी खुशहाली ।

(61) विश्वामित्र , जनक ने किया, महाराजा दशरथ का प्रेम से अभिवादन
तभी मिथिला कुलगुरु शतानन्द ने, रखा प्रस्ताव एक सुन्दर पावन
जनक नन्दिनी की छोटी पुत्री उर्मिला के लिए अनुज लक्ष्मण का हाथ
उल्लसित राजा दशरथ थे नतमस्तक, पाकर दो पुत्रवधुएँ एक साथ ।

(62) गुरुश्रेष्ठ विश्वामित्र ने दिया परिचय, जनक कुल एवं उनकी पुत्रियों का
था सुझाव उनका आज जनक कुल से श्रेष्ठ नहीं कोई भी दूजा
है यह सुअवसर राजा जनक के सहोदर कुशध्वज को समधी बनाने का
भरत-शत्रुघ्न का व्याह उनकी पुत्रियों से रचा,दोनों कुलों के यश बढ़ाने का ।

(63) चार-चार पुत्रवधुएँ राजा दशरथ थे गदगद ,दोनों कुलों मध्य नवसेतु बना
हुआ प्रगाढ़ संबंध श्रेष्ठ जनक कुल से और क्या चाहिए था उन्हें भला
बोले विश्वामित्र से मैं और मेरा परिवार ऋणी रहेगा सदा आपका
यह गौरव, सम्मान, संबंध परिणाम है आपकी सूझ- बूझ का ।

(64) नया रिश्ता दशरथ से बांध, जनकपुरी ने भी बढ़ायी अपनी प्रतिष्ठा
अद्वितीय रूप का मिलन, वीरता-पराक्रम से करा, मिली दोनों कुलों को भव्यता
बोले जनक हमें और सिर उठाने योग्य बनाया, रहेंगे आपके आभारी हम सदा
रहें बस आपके हृदय में, हुआ संतुष्ट हमारा कुल, हुई पूर्ण हमारी सारी इच्छा ।

(65) नगरवासियों ने सजायी सम्पूर्ण अयोध्या नगरी हर्ष-उल्लास से
भावविभोर माताएँ सारे अवधगण, चार बहुओं के आगमन से
चारों दिशाएं थी गुंजित, बाजे, गाजे, ढोल, नगाड़ों से
माताओं की खुशियों का अम्बार उभरा नयनों के कोर से ।

(66) राम-सीता,भरत-माण्डवी,लक्ष्मण-उर्मिला,शत्रुघ्न श्रुतकीर्ति का हुआ प्रवेश धूमधाम से
व्याकुलता दिखायी कौशल्या- सुमित्रा ने , इतने दिनों का वियोग पुत्रों से
अनेक प्रश्न कहाँ ? कैसे ? क्या हुआ ? विश्वामित्र संग विद्या पाते गुजरते वनों से
अधीर माताएँ सुनने को आतुर, हर दृष्टांत राम- लक्ष्मण के श्री मुख से ।

(67) उदास था घर-आंगन, तुम दोनों बिना, आंसू पोंछते कहा कौशल्या ने
कैसे वध किया होगा उन भयावह राक्षसों का तुम मासूम राजदुलारों ने
हो दोनों तुम सुकुमार कुंवर, वे ठहरे बलशाली, क्रूर राक्षस जंगलों के
कांप जाती हूँ सोचकर, कैसे क्रोध शांत किया होगा परशुराम का तुमने ।

(68) पुत्रवधुओं को देखते ही, माताओं के दूर हुए गिले शिकवे अपने वीर पुत्रों से
रूप का भण्डार, चारों बहनें सीता, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति को निहार प्रेम से
अद्‌भुत अवर्णनीय थी चारों जोड़ी, देवता भी थे उत्सुक निहारने अम्बर से
थकती नहीं लेती बलैया माताएं, आशीर्वाद की गंगा बही,अवध के कोने-कोने से ।

(69) राजमहल में लौटी खुशियाँ, ममता उडेल स्मित, बटोरती महल के कोने-कोने से
इधर राम भी हुए व्यस्त पिता संग, फैलते राज काज में कर्त्तव्यनिष्ठा से
किंतु बढ़ रही थी अव्यवस्था अवध में, महाराज दशरथ की उदार नीतियों से
वैसे में गैर फायदे भी उठ रहे थे, महामंत्री सुमंत्र के सरल-सहज स्वभाव से ।

(70) चाहकर भी पत्नी सीता को, न दे पाते थे समय , राजकुमार राम
जनता संग, उनके बीच रह, हर पल सुलझाते थे उनके काम
होने लगे चौकन्ने सुरक्षा सैनिक, सुधरने लगा प्रशासन सुबह-शाम
संतुष्ट वशिष्ठ ,आश्वस्त हुए दशरथ, देख बेटे का नि:स्वार्थ काम ।

(71) संपूर्ण गुण विद्याओं से पारंगत, ब्रह्मर्षि की शिक्षा से विभूषित वाणी
ऐसे वीर, सरल,मर्यादित दशरथ नन्दन का पूरे भारत में नहीं था कोई सानी
देख राम के गुण, पराक्रम, संयम, एक बात दशरथ ने मन ही मन ठानी
जतायी उसे युवराज बनाने की उत्कंठा ,जिसे गुरु वशिष्ठ ने तुरन्त ही मानी ।

(72) फैली चारों तरफ खुशियों की लहर, जान ज्येष्ठ पुत्र राम बनेंगे युवराज
माता कौशल्या, सुमित्रा थकती नहीं लेती बलैया, पल-पल देती आशीर्वाद
इधर देवताओं की स्वर्गलोक में हुई सभा, जो बनेंगे भावी राजा, राम
होगा संहार कैसे रावण का, जिसके लिए विष्णु ने लिया राम- अवतार ।

(73) लेने गए आशीर्वाद राम, माता के पास, देखा हर्ष-आश्चर्य संग उसे माँ ने
परम्परागत ज्येष्ठ पुत्र ही इसे निभाता, विस्मय क्यों ? पूछा मासूम राम ने
बोली माता, एक समय कैकय नरेश युद्ध में, हारे थे तुम्हारे पिता से
तब मिली थी , महाराजा दशरथ को, अदम्य सुन्दरी कैकयी , संधि में ।

(74) शर्त रखी तब राजा कैकय ने , कैकयी पुत्र ही होगा भावी अवधपति
बोली माता , तुम्हारे ज्येष्ठ होने के बाद भी, यादें रहती थी दबी-दबी
बड़ी सहजता से बोले राम, गर होगा भी ऐसा, क्या फर्क पड़ता था माई
आखिर है वो मेरा अनुज, मुझे स्वीकार्य रहता, वो है मेरा ही छोटा भाई ।

(75) इधर स्वर्ग लोक में, देवता हल नहीं कर पा रहे थे अपनी गुत्थि
राम के युवराज बनने के पहले सुलझानी थी ये युक्ति
अयोध्या महाराज दशरथ की, किसी भी राक्षस से नहीं थी दुश्मनी
आखिर में सबको दिखी महाराज की रूपवती रानी, पत्नी कैकयी ।

सरस्वती माता

(76) विशालाक्षी, दशरथ की प्राणप्रिया कैकयी थी, सौभाग्य-मद-गर्विता
थी उसकी एक विश्वसनीय कुबड़ी दासी,नाम था जिसका मंथरा
वो पैदा कर सकती थी,रानी कैकयी में, सौतिया डाह विष भरा
गर होए ये, दशरथ का सपना, राम बने युवराज, रह जाएगा धरा ।

(77) विचार-विमर्श बाद इन्द्र, देवता संग पहुँचे सरस्वती के पास ले आशा
बोले डालो ऐसी बुद्धि मंथरा में, भर सके कान वो कैकयी का
बोली सरस्वती , अनुचित काम की मुझसे न करो आशा
देती हूँ सुबुद्धि , किसी के लिए कुबुद्धि की होती नहीं मंशा ।

(78) पहले तो न मानी सरस्वती, किंतु देवताओं संग इन्द्र ने जब उन्हें समझाया
अच्छे परिणाम के लिए थोड़ी बुराई , नहीं है गलत , तर्कपूर्ण बताया
जब देखा, बात है यह देवताओं के हित की, सरस्वती ने दिल को मनाया
देखते-देखते मंथरा की बदली बुद्धि, जिसने कैकयी पर था रंग जमाया ।

कैकयी-मथंरा संवाद

(79) शांत-चित्त अपने कक्ष में सोयी कैकयी को, मंथरा ने देखा
दौड़ कर दिया संदेश , राम के युवराज होने का
हर्षित, उत्तेजित कैकयी ने, दिया उतार अपने हीरों की माला
बोली करो स्वीकार, शुभ संदेश जो तुमने मुझे आज सुनाया ।

(80) देख कैकयी की खुशी, उसकी कोमल भावना, राम के प्रति प्रगाढ़ता
बोली मंथरा, तनिक भी आभास नहीं तुम्हें आने वाले दिनों का
तुम न होगी अब प्राण-प्रिया दशरथ की, कौशल्या होगी राजमाता
उसके आगे पीछे दौड़े सब, तुम यूं ही बिखेरती रहना अपनी ममता ।

(81) आभास नहीं तुम्हें अपने प्रिय बेटे भरत की मुश्किलों का
जीवन बिताएगा वो बन दास अपने बड़े भाई राम का
फिर उसने गुजरी बातों का दौर कैकयी को सुनाया
कैद था जिसमें सुनहरा भविष्य भरत का याद कराया ।

कैकयी का मन बदलती - मथंरा

(82) कैसी कर्कश असभ्य बातें करती हो मंथरा,डांटकर बोली कैकयी
ऐसी कुबुद्धि, मेरी दासी होकर भी,मंथरा तुममें क्यूँ कर आयी
राम मेरा भी है दुलारा प्यारा बेटा, और मैं उसकी प्रिय माई
ऐसे कठोर शब्द कहते, तुम्हें जरा भी लज्जा न आयी ।

(83) बोली मंथरा, हाँ हाँ बोल लो राम, बेटा राम, राज दुलारा
कल जब होगा वो युवराज, और होगी कौशल्या राजमाता
घूमेगा भरत राम के और तुम कौशल्या के पीछे दौड़ना
उस आँख मिचौली में, बेबस दासी बन,जिन्दगी गँवा देना ।

(84) फिर भी न मानी कैकयी बोली, खुशी-खुशी मंथरा से
तुम क्या जानो होते क्या, संस्कार राजवंशी घरानों के
ये राजसी खून के रिश्ते, करना नहीं अवहेलता कभी भूलके
ऐसे कुविचार उपजते , तुम जैसी नीच दासी ही के ।

(85) रहो तुम मदमस्त अपनी सोच में चिढ़कर विफरी मंथरा
वैसे भी मुझे क्या ? मुझे कहाँ अवध की राजमाता है बनना
सारे दास-दासी महल के करेंगे, राजमाता कौशल्या की सेवा
मैं भी क्यों न जाऊँ, उनके पाँव दबा, खाऊँगी मलाई-मेवा ।

(86) थोड़ी डगमगायी कैकयी, पूछा भोलेपन से सब करेंगे उनकी ही सेवा !
आखिर तो हूँ माँ सौतेली ही,किस सौतेले बेटे ने चाहा उस का भला
सच, है ये असमंजस की घड़ी,लेकिन करूँ क्या मैं, बोलो मंथरा
तुमने आँखें मेरी खोल दी, समझ में आ रही अब बात, जरा-जरा ।

(87) अब तक कुबुद्धि ने ले ली थी अंगड़ाई , मस्ती में इतराई
बोली कैकयी इतनी बड़ी बात मेरी समझ में क्यों न आई
भले समय हो बुद्धि से पतला, उसे पकड़ने में ही है चतुराई
एक शंका के जन्म ने,बदली कैकयी की सुमति, कुमति मुस्कायी

(88) उचित समय देख मंथरा ने कुबुद्धि डाल कैकेयी को उकसाया
महाराजा द्वारा दिए गए वचनों का उसने याद दिलाया
याद कीजिए आपकी उपस्थिति जब इन्द्र समक्ष लड़े थे महाराजा
तब ओज और तेज से भरी स्वयंसिद्धा, आपने उनको था बचाया ।

(89) याद करो युद्ध में थी तुम सारथी, जब महाराजा पर हुआ था वार
महाराजा के प्राण बचा, आयोध्या पर किया था आपने उपकार
उस समय भावुक बन राजा ने , दो बचन दे, निभाया था प्यार
कहा था जब जी चाहे ले लेना, है यह मुझ पर तुम्हारा उद्धार ।

(90) बोली मंथरा, मांगो भरत का राजतिलक अपने पहले वर से इस घड़ी में
दूजे से , राम त्यागे राजमहल, जाए चौदह वर्ष के लिए वन में
इतने वर्ष ! क्यों एक वर्ष नहीं बोली कैकयी, था ममत्व अभी भी दिल में
बोली मंथरा इतने वर्षों में सब भूलेंगे राम को, छाएगा हमारा भरत अवध में ।

कोप भवन - दशरथ कैकयी

(91) फेंक आभूषण काले कपड़े पहन पहुँची कैकयी कोप भवन में
उतरी थी उसके गले में हर बात, जो कुछ कहा था मंथरा ने
दौड़ते हाँफते आए दशरथ, पूछने हाल कैकयी का, कोप भवन में
पूछा क्या हुआ, मेरी प्राणप्रिया को, राजतिलक की शुभ घड़ी में ।

(92) बिफरी कैकयी, हाँ मन है अशान्त,और याद दिलाया ,उनके दिए वचनों का
आश्वस्त दशरथ बोले, याद है पूरा करूँगा उसे, है यह वादा अवधपति का
तो सुनो राजन बोली कैकयी,राम की जगह राज्याभिषेक होगा भरत का
हतप्रद राजन , बन अविश्वासी बोले, राम तुम्हें तो प्रिय है भरत से ज्यादा ।

(93) खत्म नहीं हुई मेरी बात, बोली कैकयी सुनो दूजा वचन हे अवध राज
राम तपस्वी वेश धारण कर , लेंगे चौदह वर्ष का वनवास
एक पिता दिल चित्कार उठा धिक्कार है तुम्हें,पापी कुलटा, मूर्ख नार
न्यौछावर किया जिस पर सब कुछ, वही बनी आस्तीन का साँप ।

(94) बिलख-बिलख कर रो पड़े महाराजा, अपनी बेबसी पर कोप भवन में
कहा, अभी दूत संग संदेशा भिजवाता हूँ, भरत के ननिहाल में
कल ही होगा उसका राजतिलक पर मेरे राम को न भेजो वन में
जहाँ दशरथ का कामवेग था अंधा, वहीं अंधी थी कैकयी, पुत्र प्रेम में

(95) मैं अपने राम की शपथ खा कर कहता हूँ, बनोगी तुम ही राजमाता
बोले हताश पिता, कौशल्या बांदी बन करेगी तुम्हारी सेवा सर्वदा
मृतप्राय राजा बोले, राम भी बना रहेगा सेवक भरत का,भले हो बड़ा
पर वापस ले लो दूजा वचन, समझो इसे मेरे हृदय की प्रार्थना ।

(96) राम और सिर्फ राम कभी अपने दूजे पुत्रों के बारे में भी सोचा
बोलती गयी कैकयी, मानो काल जिह्वा में था, उसके समाया
पुनः कहा,आता ही होगा आपका राम यहाँ, मैं ने उसे यहीं बुलवाया
आह विधाता! तड़पे पिता! मेरे प्राण लेती पतिता, ये स्वांग क्यों रचाया ।

(97) अन्ततः याचक की तरह तड़पे राजा, पैर पकड़ता हूँ, राम को शरण दे दे
इतने में स्वयं राम आ पहुँचे, माता के बुलावे पर कोप भवन में
आहत, विस्मित, तड़पे, देख पिता को,यूं शोचनीय दशा में लोटते भूमि में
व्याकुल बन घबराये राम, देख महाराजा को इस अतिदयनीय स्थिति में ।

(98) शोक का कारण पूछा राम ने पिता से, प्रत्युत्तर दिया कैकयी ने
कभी इन्होंने दिए थे दो वर मुझे, आज उनको मांगा है, मैं ने
उसे पूर्ण न कर पाने की विवशता में, दयनीयता दिखा रहे मुझे
या चाहते नहीं उसे पूर्ण करना जो स्वयं उन्होंने दिया था मुझे ।

(99) गरजे दशरथ ओ पतिता ! यूं मुझ पर लांछन तो न लगा
क्या मेरे प्राणों से तृत्त होगी तुम्हारी तृषा, अशोभनीय मंशा
जिद्दी, अडिग कैकयी ने कह डाली, उन दोनों वरों की कथा
सुनते ही बोले राम पिता से, मत करो जरा भी इसकी चिन्ता ।

(100) यह मेरे लिए है वरदान, सिहासन भरत से होगा शोभायमान
इसे संभालने की योग्यता है भरत में, हम सब का बढ़ेगा मान
रही बात दूजे वर की, तो पिता श्री, है सिर्फ चौदह साल की बात
बीत जाएंगे पलक झपकते,आपके आशीर्वाद के साथ, ये सब साल ।

(101) मझली माँ , पिताश्री , दीजिए मुझे आपका आशीर्वाद , बोले राम
बिलखते पिता को छोड़ ,कौशल्या कक्ष में आए दशरथनंदन राम
ब्रह्म मुहूर्त में होना था अभिषेक ,हर्ष उल्लास की थी वो शाम
माता कौशल्या, रानी सुमित्रा संग पक्षी सी चहक रही थी आज ।

(102) इतने में दूर से देखा कौशल्या ने, पुत्र राम को आते
ममता लाख लाख बलैया लेने लगी, शुभ घड़ी समीप दिखते
आते ही बड़े संयम विवेक से कहा राम ने, प्रणाम माते
जा रहा हूँ वन में, बस आशीर्वाद चाहिए माँ आप के ।

(103) क्या कह रहे हो पुत्र ! आशंका से भीगा स्वर माँ का
अभी ही है अभिषेक, क्यूं नाम लेते हो उन वनों का
नहीं माँ, बोले राम, अब राज्याभिषेक होगा भाई भरत का
चौदह वर्ष का वनवास है मुझे, दण्डकारण्य का ।

(104) मत करो ऐसी बहकी बातें , अचेत सी बोली माता
आ जाए जिससे वज्रपात, ऐसा सच नहीं है सुनना
मर्यादा में बोले विवेकी राम, पड़ेगा माँ तुम्हें ये सुनना
होगा भरत का राजतिलक, मेरा वनवास जहाँ मुझे जाना ।

(105) पिताजी ने दिए थे दो वचन माँ कैकयी को, बोला पुत्र दुःखी माँ से
उन्हीं वचनों को पूर्ण करने, माता ने मांगे दो वर, महाराज पिता से
इसलिए हे माता , न रोको मुझे अब तुम वन जाने से
है यह माता पिता की आज्ञा, रघुकुल शोभा बढ़ेगी, इसे पूर्ण करने से ।

(106) दु:ख का अम्बार, संयम का बंद द्वार , बिफरी कौशल्या
ऐसी निर्लज्ज ! ईर्ष्यावश बैर क्यों निभा रही मेरे पुत्र से, हे पतिता
खुशी , आनन्द, प्रेम से करो राज्याभिषेक, अपने पुत्र भरत का
पर क्यों वन वन भटके मेरा पुत्र , मेरे ही दिल का टुकड़ा ।

(107) क्रोध में संयम खो, हुई आपे से बाहर , माता सुमित्रा
बोली दिमाग फिर गया है, उस दयाहीन कैकयी का
देवता जैसा विवेकशील , होनहार बेटा राम हमारा
भला दे सकता है कोई उसे, वनवास चौदह वर्षों का ।

(108) आखिर डसा उसी ने , जिसे प्रिय माना महाराज ने
जीवन भर जिस रूप, सौन्दर्य, सुनयनी पर मोहित रहे
सौतिया डाह से वशीभूत, डसा उसी पाषाण हृदयवाली ने
हर सीमा पार कर डाली, पुत्र के अंधे मोह में उसने ।

(109) माँ को पिता के वचनों से अवगत करा
बोले राम, है यह रघुकुल की रीत सदा
प्राण जाए पर वचन न जाए .....- माँ!
मेरी आत्मा की भी यही पुकार है, आज माँ !

(110) सुध-बुध खो रही थी , विवेकी माता कौशल्या
न संभाल पा रही थी, किसी तरह उसे माता सुमित्रा
मूर्छित,क्षोभित माँ को देख, आज विवश थे,राम यहाँ
रघुकुल वचन के सामने, सिसक रही थी ममता ।

(111) इन सबसे अनजान माँ को मदद करने आयी सीता
हुई आश्चर्य चकित देख व्यथित रूप माताओं का
दोनों वचनों से , राम ने उसे अवगत कराया
खुद के वन जाने एवं भरत का राज्याभिषेक जताया ।

वनप्रस्थान हेतु आर्शीवाद लेते हुए

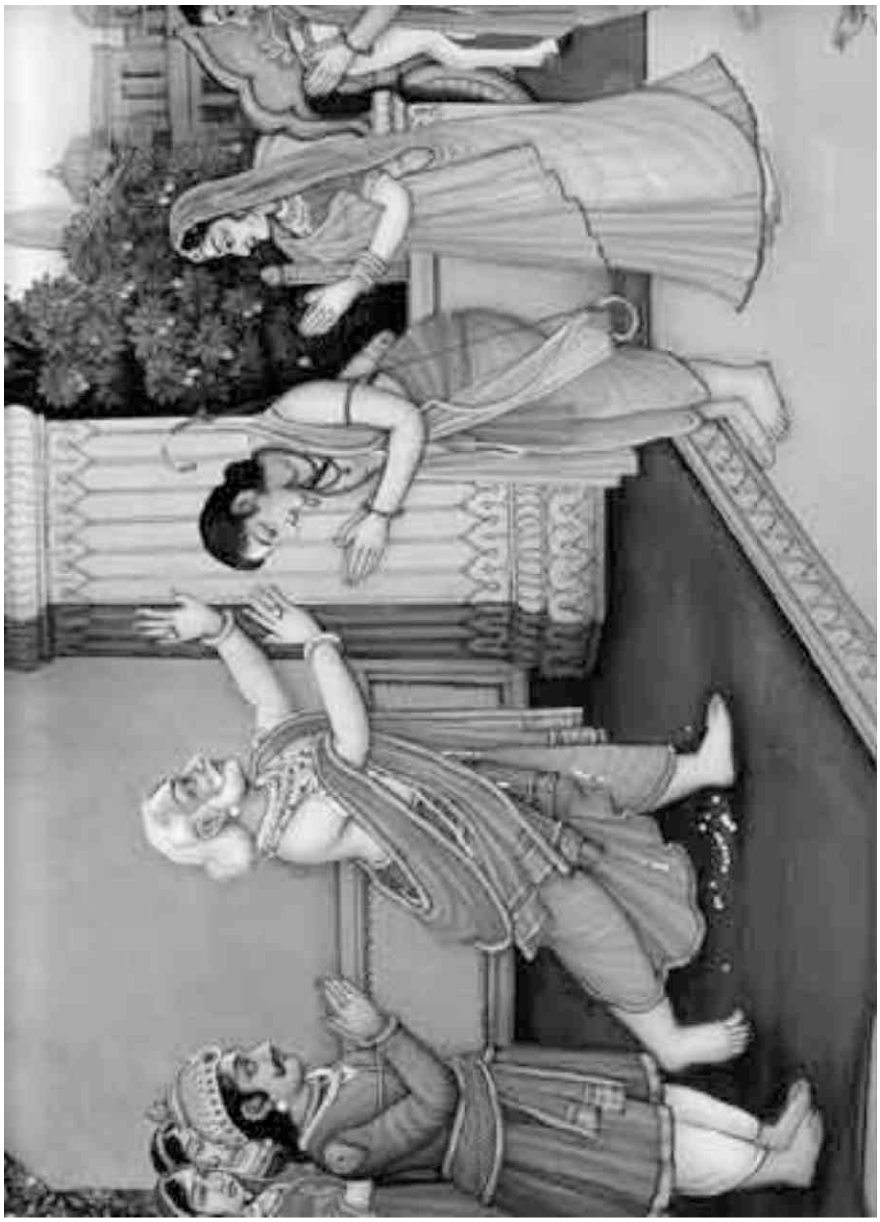

दशरथ,राम-सीता,लक्ष्मण

(112) बोले राम, यहीं रह तुम, माता पिता की सेवा करना
मैं तो आदी हूँ , वन के ग्राम्य जीवन जीने का
विनम्र सीता बोली, आपसे अलग नहीं है जीवन मेरा
संग जाऊँगी, सुख-दु:ख की साथी ,आपकी सर्वदा ।

(113) दिल पर पत्थर रख , माता ने दे दी आज्ञा
सुख- दु:ख बंट जाते,जो पति-पत्नी का साथ, है होता
इतने में क्रोधित लक्ष्मण ने , आते ही भैया राम से पूछा
क्या है यह सब सत्य, जो सुमंत्र ने अभी मुझे बताया ।

(114) आज अवध में , प्रलय तो होकर रहेगा
लूंगा प्रतिशोध , ऐसी कुटिल माता, की आज्ञा का
अगर मझली माँ समझती है , हमें सौतेला
तो मैं जवाब दूंगा , बन नहले पे दहला ।

(115) देख सुमित्रा की ओर , क्रोधित लक्ष्मण बोले
जो भरत का दिया साथ , शत्रुघ्न ने, अनजाने
कत्ल कर दूंगा उसका मैं , सबसे पहले
है यह मेरी सौगन्ध, माता तू भी ये सुन ले ।

(116) बोले राम , नहीं बोलते ऐसा अपने माता -पिता से
जैसे भी हों, हैं वे हमारे पूज्य , समझाया राम ने
बौखलाया लक्ष्मण, भरत की खातिर कुचक्र रचा है उन्होंने
फिर भी कहते आप, माता-पिता करते, संतान के हित में ।

(117) शांत चित्त हो बोले राम, यह मेरा निर्णय सुनाता हूँ सबको
भरत का होगा राज्याभिषेक , मैं जाऊँगा वन को
हताश लक्ष्मण टूटे, हाथ जोड़ संबोधित किया भैया को
बोले, प्राण देकर भी ऐसा निर्णय न लेने दूंगा आपको ।

(118) कोई अनिष्ट न होगा, वन मुझे भाता, वही जीवन सिखाता
भरत है योग्य हर तरह से, बने राजा मेरी भी यही है कामना
दु:खी , हताश लक्ष्मण बोले अकेले न होगा आपका जाना
बोले राम , नहीं मैं अकेला, संग चल रही वन को सीता ।

(119) तो मैं भी चलूँगा , कहा लक्ष्मण ने , भैया से तड़पकर
जी नहीं सकता आप बिन , मैं अकेला पल भर
बोले राम प्रेम से, माताओं की सेवा करना , तुम यहीं रह कर
रो पड़े लक्ष्मण ,मत रोकिए मुझे, जाऊँगा संग ,आपके पथ पर ।

(120) आखिर कहा माता सुमित्रा ने, जाने दो इसे भी संग, वन में
जानती हूँ रह न सकेगा तुम बिन ,यहाँ इस महल में
बांट लेगा दु:ख कष्ट भाई भाभी के, रहेगा तुम दोनों को बहलाके
तुम दोनों की सेवा भी कर देगा उन बीहड़ जंगलों में दौड़-दौड़ के ।

वल्कल वस्त्र धारण किया अवध कुमारों ने

(121) गए तीनों एक साथ लेने आशीर्वाद, बेसुध दु:खी पिता का
देख उन्हें बोली कैकयी, वन जाने का वादा था सिर्फ राम का
फिर क्यों सीता लक्ष्मण को भी साथ, राम के है जाना
कहा राम ने , स्वेच्छा से वन जाने को ,इन्होंने है स्वीकारा ।

(122) बोली कैकयी, अगर सुमित्रा , कौशल्या को नहीं आपत्ति
तो मुझे भला क्यों होगी कठिनाई, न चाहिए मेरी स्वीकृति
बोले लक्ष्मण , हमारे जाने से क्यों रुष्ट होगी ये धरती
जब भैया के जाने से , किसी की छाती नहीं है फटती ।

(123) इतने में भी न था संतोष कैकयी को ,वल्कल वस्त्र पहना राम ने
उनके साथ जाने वाले भी छोड़े ,राजसी वस्त्र अलंकार महल में
भंग कर रही मर्यादा, तड़प कर दशरथ बोले मुनिवर वशिष्ट से
कुलवधु, राजवधु सीता को भी नहीं छोड़ा इस कुलटा पापिन ने ।

वनगमन : राम-सीता-लक्ष्मण

(124) राजगुरु वशिष्ट बोले कौशल्या से, है यह अधर्म, जाएगी सीता राजवस्त्र में
बोली रानी, मुझे चुप ही रहने दीजिए,मेरा हर हक छीन लिया इस सौतन ने
पति की आज्ञा, रघुकुल की खातिर , सील लिया है ओठ मैं ने
कैकयी है धोखेबाज, तुम ही हो मेरी रानी, आहत दशरथ बोले कौशल्या से ।

(125) हतप्रभ वशिष्ट, दशरथ,कौशल्या, किन्तु राम ने शुरू किया आशीर्वाद का सिलसिला
नमन किया तीनों ने मात-पिता को, हिचकियों में दशरथ,था मुश्किल उसे संभालना
रोक ले अभी भी उसे, कैकयी से बोले दशरथ, दुष्टता की जड़, ओ . . कुलटा !
मांग रहा भीख एक पति तुझसे, हम सब रघुवंशी का, दीया तुमने बुझाया ।

(126) व्याकुल दशरथ बोले गहन अंधेरे में, अभी भी रोशनी दे, दे पत्नी बन के
कौशल्या ने खोया धैर्य, बोली जाऊँगी मैं भी, ज्यों गाय जाए बछड़े के पीछे
छोड़ महल, माता चलेगी साथ , जंगल, पहाड़, नदी कंटीले वनों के पथ में
ममता की खातिर पति सेवा धर्म छोड़ नहीं सकती माँ, समझाकर कहा राम ने ।

केवट निषाद राज - गंगा पार कराते हुए

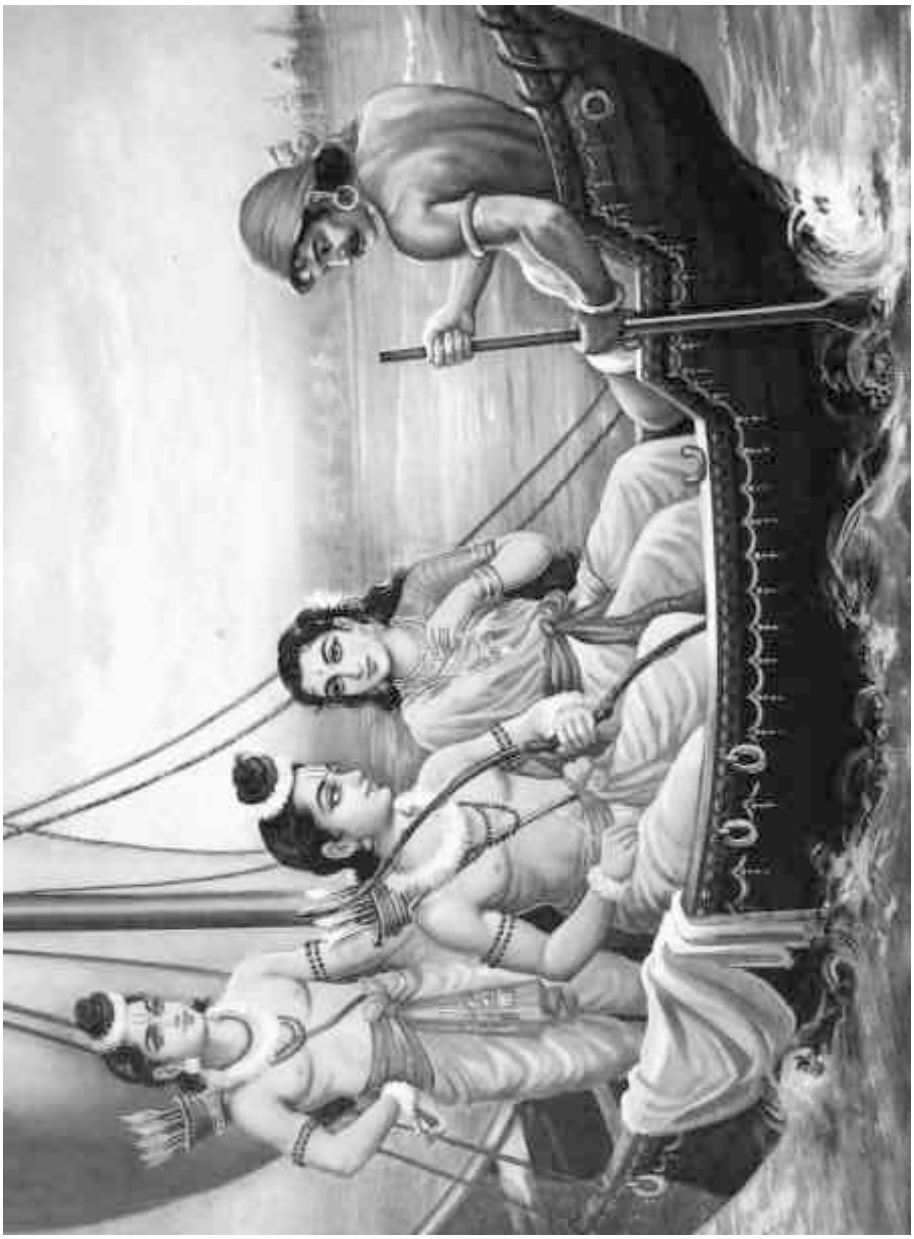

(127) देख रथ संग सुमंत्र को, बोले राम,समय नहीं इसका, तैयारी करो राजतिलक की
हाथ जोडा सुमंत्र ने, प्रभु अवध सीमा तक स्वीकारें प्रार्थना है विवश पिता की
बिलखती माता , तड़पते पिता, व्याकुल प्रजा से हाथ जोड़ तीनों ने ली विदाई
सारी प्रजा पुकार उठी, हमें भी ले चलिए साथ प्रभु, रहेंगे हम बन वनवासी ।

(128) अवध सीमा पार बह रही थी निर्मल, पवित्र, अबाध, चंचल , कलकल गंगा
बोले सुमंत्र करनी होगी नाव ,जाने को पार, आए निषाद राज देख अवध ध्वजा
परिचय दिया सुमंत्र ने, चाहिए हमें एक नाव, भावविभोर गदगद बोले निषादराज
धन्य हुई यह धरती, धन्य हमारा गाँव, आए अवध कुमार, धन्य हमारा द्वार ।

(129) समझाया राम ने, यहाँ हम वनवासी, भले हो राजकुमार, जा नहीं सकते तुम्हारे गाँव
कर जोड़े बोले निषाद राज, स्वीकार कीजिए हमारा थोड़ा फल -फूल आहार
विनीत राम ने माफी मांग कहा निषाद राज से, हमारा उद्देश्य है करना नदी पार
प्रेम से समझा निषाद राज को, रथ से उतरे सीता संग दोनों अवध कुमार ।

(130) अब तक रोक रखा था भावनाओं को सुमंत्र ने, हाथ जोड़ किया आग्रह
जाऊँगा मैं आप सब के साथ ही, मानिए दुराग्रह , सत्याग्रह या मताग्रह
जवाब क्या दूंगा अवध वासियों को, मनाऊँगा कैसे महाराजा को, होंगे वे व्यग्र
छोड़ अकेला आ गए खुद राजसुख भोगने, इतनी विनती का भी नहीं है संग्रह ।

(131) मत हो भयभीत बोले राम ,कहना गंगा पार कर हम पहुँचे हैं वन में
नहीं है हमें यहाँ कोई कष्ट ,अभ्यस्त हैं हम इस वन्य जीवन के
बेटी सीता, लक्ष्मण-राम से, रोते-रोते ली विदाई अवध मंत्री सुमंत्र ने
मान खुद को भाग्यहीन, कुंठित, दु:खी थे लाचारी के धर्मसंकट में ।

(132) इतने में पास आए लक्ष्मण सुमंत्र के, कानों में फुसफुसाकर बोले
उर्मिला से कहना न करे चिन्ता, मात-पिता की सेवा में मन लगाए
बात है सिर्फ चौदह वर्ष की, छोटी अवधि मान मन को समझाए
पलक झपकते बीत जाएंगे, कहना समझ ले सकुशल हम आए ।

(133) हिदायतें दी राम ने सुमंत्र से, रखना अपने साथ हमारे व्यथित पिता का ध्यान
तीनों माताओं, खास कर अनुज बहु उर्मिला का ध्यान,है जिसके लिए हमें मान
इतिहास होगा साक्षी ,रघुवंश में उसके त्याग, धीरज, सहनशीलता की रहेगी शान
भारी मन से निषाद राज संग , सुमंत्र ने ली विदाई,आँसू को सब्र में बांध ।

(134) पहुँचे तीनों भारद्वाज आश्रम , किया प्रणाम सबने मुनीवर को
परिचय पा हर्षित मुनि ने दिया आमंत्रण उन्हें वही रहने को
बड़े विनय से दशरथ नंदन राम बोले, जाना हमें दण्डकारण्य की ओर
मिले जहाँ पक्षियों का कलरव, नीरव वन की शांति, बिना कोई शोर।

(135) बोले मुनिवर फिर तो श्रेष्ठ है चित्रकूट धाम, है जहाँ नदी, पहाड़ और शांति
तपस्या करते ऋषिगण, आश्रम आस-पास, जो जगह है सुरक्षित मनोहारी
इधर राज द्वार पर सुमंत्र की राह पर, राजा दशरथ की लगी हुई थी टकटकी
देखते ही उछले, कहाँ हैं मेरे पुत्र, मेरी आँखें ढूंढ़ रहीं उन्हें हर पल हर घड़ी ।

कर्तव्यनिष्ठ श्रवण कुमार

(136) रो पड़े सुमंत्र पुत्रों को न ला पाने की असमर्थता जता
सुमंत्र की बाँहों में ढेर हो गए विमूढ .एक अत्यंत बेबस पिता
कैसे जीएंगे कठोर वन जीवन पुत्र मेरे और मेरी पुत्रवधु सुकुमारी सीता
हे सुमंत्र तुम्हें भेजने का था यह स्वार्थ, काश समझ पाते तुम मेरी मंशा ।

(137) आ गया है मेरा अंत कहा महाराजा दशरथ ने, कौशल्या से
आज याद आ रहा है शाप, कैसा शाप ? पूछा घबराकर कौशल्या ने
पुत्र वियोग से होगी मेरी मृत्यु, दिया था शाप मुझे कभी किसी ने
लगता है अब होगा फलीभूत, मिला था मुझे जो मेरी गल्तियों से ।

(138) बोलते रहे दशरथ, था मुझे चाव आखेट का, शब्द बेधी वाण चलाने का
एक दिन सरयू तट पर घुड़घुड़ आवाज सुन चलाया तीर, जान पशु वन का
पर था वो श्रवण कुमार, जो अंधे माता-पिता संग तीर्थयात्रा को था निकला
प्यास बुझाने मात-पिता की, था वो नदी तट पर, जिसे मैंने जानवर था माना ।

अचेत श्रवण,दशरथ के बाणों से

(139) वाण से हुआ अचेत बालक, देख अपनी करनी पर क्षोभित हुए दशरथ राजा
ब्रह्म हत्या का लगेगा दोष, धिक्कारा दशरथ ने खुद को, ये क्या कर डाला
कहा श्रवण ने कराहते, माँ मेरी शुद्र , पिता वाणिक, दोष न तुम्हें वो लगेगा
पर मैं, अंधे माता-पिता का एकमात्र सहारा, ये आपने क्या कर डाला !

(140) उसी क्षण श्रवण ने त्यागे प्राण, दोषी राजा चले अंधे माँ-बाप को पानी पहुँचाने
आवाज पदचाप की सुन बोली माता, बड़ी देर कर दी पुत्र थे हम चिंता में
हूँ राजा दशरथ नहीं आपका पुत्र, अनजाने ही मृत्यु पायी मेरे तीर से श्रवण ने
एकमात्र पुत्र का विछोह सह न पाए दोनों, श्राप दिया मुझे प्राण त्यागने से पहले ।

(141) जैसे हम बिलख रहे पुत्र विछोह में, तुम भी तड़पोगे पुत्र मोह में रखना याद
बोले अंधे दंपति, हमारी ही तरह तड़प-तड़प कर निकलेंगे तुम्हारे प्राण
बोले दशरथ अपनी बड़ी रानी से, उसी स्थिति में पहुँच गया मैं आज
झूठी तसल्ली देती बोली कौशल्या, आ जाएगा राम धीरज धरो मेरे नाथ ।

(142) कराहते रहे दशरथ, पता नहीं इतने पल कैसे जिया, बिना पुत्र हे राम
पुनः बोले न होगा सहन कुछ भी अब, है आज यह आखरी शाम
शनैः शनैः प्राण दीया हुआ धूमिल, वियोग की पराकाष्ठा में था, दर्दनाक विलाप
कौशल्या की गोद में बेसुध महाराजा, प्राण शरीर का फासला बढ़ गया था आज ।

(143) देखते देखते हाय राम ! हाय लक्ष्मण! करते प्राण त्यागे महाराज दशरथ ने
कौशल्या-सुमित्रा चित्कारी, रघुकुल ज्योत बुझी थी वेदना की पराकाष्ठा में
बाहर उपहारों से भरा रथ खड़ा था, दुःख के अंधेरे बादलों के मध्य में
ननिहाल को कर विदा भरत- शत्रुघ्न सकुशल पहुँचे थे, अपने अवध में ।

(144) विस्मित हुए दोनों देख वर्णातीत सन्नाटा, रहस्य क्या हो सकता इसका भला
पहुँचे माता के कक्ष में किया प्रणाम, भावविभोर कैकयी पुत्र को गले लगा
पिताश्री को न पाकर बोले, हम तो आए पिता से मिलने जान होंगे वे यहाँ
पर बताओ माँ, कहाँ हैं हमारे पिता रहा नहीं जाता पल भी उन्हें देखे बिना ।

(145) लाते देख मंथरा को मिष्ठान पानी, बोली कैकयी थके हो कर लो जलपान
नहीं बोले दोनों, पहले मिलेंगे पिताश्री से, फिर होगी दूजी कोई शुरूआत
दिखती नहीं बड़ी माँ, मझली माँ, भैया-भाभी बोले दानों भाई साथ-साथ
नगर भी सूना, महल भी शांत, इतना सन्नाटा कभी देखा नहीं, है क्या बात !

(146) फफक कर रो पड़ी कैकयी आसुओं की बह चली धार
बोली मंथरा कह न पाएगी ये, खोलती हूँ मैं इसका राज
नहीं रहे महाराज हमारे, हुआ अचानक उनका स्वर्गवास
हां बेटे, बोली कैकयी छोड़ा हमें अकेला, छोड़ा ये संसार ।

(147) तड़प उठे दोनों भाई, हो नहीं सकता, हमें कुछ भी न ज्ञात कराया
थी ऐसी बीमारी कौन सी, जो हमें सूचित तक न कराया
संतोष है भैया के होने का, जिन्होंने किया अंतिम दर्शन पिताश्री का
वे भी न थे अंतिम समय, अवगत कराया कैकेयी ने वनवास का ।

(148) क्या बोल रही हो माँ, आँसुओं में डूब तड़प कर थरथराए भरत
अपराध क्या था उनका,जो उन्हें छोड़ना पड़ा दु:ख काल में अवध
लक्ष्मण भैया,भाभी भी गए साथ,हो रहा चेतनाशून्य, अस्थिर है मगज
जो भी है बात, चीखे भरत माँ पर,बताओ अभी ही आज सब सच ।

(149) ये झिझक रही है शायद यह कहने में ,बोली मंथरा
तुम कैकयी पुत्र भरत, अब हो सम्पूर्ण अवध के राजा
ये मंझली रानी कैकयी तुम्हारी माता, है अब राजमाता
बैठो तुम राजगद्दी में, इसलिए कुचक्र हमने ही ये रचा ।

(150) दशरथ के कैकयी को दिए वचन की सुनी सारी बात
वर से मांगना भरत का राज्य, राम भैया का वनवास
मंथरा के सुझाव से कैसे कैकयी ने लगायी थी आग
जिसमें झुलसे उनके महाराजा पिता, कैसे हुए वे अनाथ ।

(151) जानकर सत्य दोनों भाई, क्रोध वेदना पीड़ा से लगे सुलगने
ये क्या कर डाला माँ तुमने ,भरत हताशा में लगे थरथराने
किस मुँह से कहूँ मैं माता, खोया यह सम्बोधन खुद तुमने
अपवित्र किया शब्द 'माँ' तुम्हारी ही कुबुद्धि से स्वयं तुमने ।

(152) क्रोधित शत्रुघ्न हुए आपे से बाहर, सबकी जड़ है कुबड़ी मंथरा
दीवाल से पटक-पटक कर अंतिम हश्र करूँगा मैं इसका
इस पापिन के शरीर का एक बून्द भी न बाकी रखूँगा
इसकी काली करतूतों ने ही उठाया हमसे पिता का साया ।

(153) छोड़ दो सौमित्र इसे, बोले पीड़ित भरत हो हताश दु:खी
जब ममता में हो खोट, तो क्या करेगी ये तुच्छ दासी
सुहाग की कीमत पर करने चली थी बेटे को सुखी
इतना तुच्छ, पापी,नीच समझा अपनी कोख को,कृतघ्न नारी !

(154) न करो ऐसा क्रोध, बोली कैकयी, तुम्हारे सुख के खातिर , ये किया
एक मां की तरह मैं ने भी ,अपने स्वार्थ में पुत्र के हित को परखा
बोले भरत, हत्यारिन भौतिक सुख की चाह में अपना सिन्दुर मिटाया
निष्ठुर जड़! कैसे सामना करूँगा मैं पूज्य बड़ी माँ और छोटी माँ का ।

(155) आह पुत्र ! मेरी मूर्खता, तेरे शब्दों ने उजागर कर दी बेटे
जाकर पकड़ूंगी मैं पांव , अपनी कौशल्या दीदी के जा के
कर दो मुझे क्षमा, प्रायश्चित करूँगी मैं कहती हूँ दिल से
दु:खी भरत बोले , क्या दर्शन करा पावोगी हमारे पिताजी के ।

(156) तीनों माताएँ , मुनि वशिष्ठ, सुमंत्र संग भरत-शत्रुघ्न ने
पूरी की पिता की अंतेष्टि, बोले तब राजगुरु भरत से
अब नगर व्यवस्था, राज काज में लगाना होगा मन फिर से
जन्म हुए का होना है अंत, मुकर नहीं सकते इस सत्य से ।

(157) आहत भरत! मानता हूँ , हे गुरुदेव आपकी हर बात
दु:ख- पश्चाताप -संताप का जीवन में रहेगा साथ
किसी के होने न होने ,से न रुकेगा किसी का काम
किंतु यह कलंक का टीका, बार-बार आ रहा मेरे हाथ ।

(158) भ्रम है तुम्हारा, बोले गुरुदेव नहीं हो तुम कहीं से भी दोषी
सब कुछ भूल संभालो राज-व्यवस्था, उत्तरदायी हो तुम ही
महाराज की आज्ञा भी थी यही, राजपद संभालना है तुम्हें ही
समझते सब तुम्हारा मानसिक क्लेश,पर सत्य स्वीकारना है ही ।

(159) बड़े भाई के होते ,मर्यादा विरुद्ध मैं जा नहीं सकता
अवध का राजा भला मैं ! ये कैसे हो सकता
दु:खी नही थे राम, राज सौंपने में ,बोली कौशल्या
वैसे भी राज्याधिकार, भार स्वरूप उसे था लगता ।

(160) अवध प्रजा को अनाथ अब छोड़ नहीं सकते
करने होंगे पूरे प्रण, जिसके लिए प्राण त्यागे महाराज ने
साहसी छोटा भाई लक्ष्मण भी नहीं है आज साथ मेरे
सिसकते रहे भरत, पिता का साया भी नहीं पास मेरे ।

(161) कैसे पाऊँ, बड़े भैया, स्नेही सीता भाभी को आज
उन्हें वन में झोंक, संभालूँ कैसे ये सारा राज काज
कैसे तिलांजलि दे दूँ मर्यादा- परम्परा को, पाने ताज
छोड़ नहीं सकता धर्म, मुकुट मुझे नहीं सकता है बांध ।

(162) समझाया कौशल्या ने, न दिल करो छोटा, सब कुछ है मर्यादा में
वचन निभाने राम गए वन स्वतः ही, गए लक्ष्मण भ्रातृ प्रेम में
सीता ने निभाया पति धर्म, अब तुम पूर्ण करो वचन पिता के
बढ़ा है तुम्हारा उत्तरदायित्व, निभावो धर्म तुम राज-कर्म कर के ।

(163) था नहीं यह वचन, मजबूरी में थोपा गया था इसे
मैं भी निभाऊँगा, बोले भरत, हर कार्य धर्म से
जाऊँगा मैं वन, भैया राम को अवध वापस लाने
न होऊँगा निराश, ऐसा विश्वास है मुझ में ।

(164) कैकयी की चुप्पी दिखा रही थी, पश्चाताप की अग्निवर्षा
था यह हठ भरत का, किन्तु रामदर्शन की सबमें थी व्याकुलता
तीनों माताएँ, कुलगुरु वशिष्ट, सुमंत्र संग आतुर थी सारी प्रजा
मुश्किल था रोकना,चाह रहे थे सब इस अवसर का साक्षी बनना ।

(165) चल पड़े भरत शत्रुघ्न वन को तीनों माताएँ, उर्मिला, गुरु, मंत्री संग
रोक न पाए प्रजा को, थी जिनमें राम दर्शन की,अदभुत उमंग
इधर वन में उड़ती धूल देख, विस्मित, भैया-भाभी संग लक्ष्मण
धूल के बवंडर ने, संशय की और भी बढ़ायी थी तरंग ।

(166) विचारे लक्ष्मण , यह बड़ी सेना, होगी जरूर भैया भरत की
हमें वन भेज, कहीं मति तो नहीं मारी गयी है उनकी
निस्सहाय, निहत्था हमें समझ, चाहत तो नहीं हमें मारने की
तो कसम है, मैं भी न छोड़ूँगा उन्हें, पलट दूँगा सारी पृथ्वी भी ।

(167) मत बनो , ऐसे अधीर समझाकर बोले राम,अनुज लक्ष्मण से
चल सीधे निरीक्षण करते चढ़कर, उस ऊँचे टीले से
तीनों माताएँ, गुरुदेव, भरत, शत्रुघ्न, उर्मिला दिखे आते दूर से
करो व्यवस्था जलपान, आवभगत की, कहा राम ने सीता से ।

(168) क्रोधित, संशयी लक्ष्मण नहीं थे तैयार, इन वचनों के
तय करूँगा मैं , आवभगत होगी जलपान से या तीरों से
देखते ही देखते आए समीप भरत माताओं संग अधीरता से
आते ही रोते, लिपट पड़े, पैरों पर भैया के, दुःख संताप से ।

(169) बिलख कर रोते,क्षमा मांगते रहे भरत,खुद को अपराधी बना
हूँ मैं पापी, मेरे कारण आपको इस वन्य जीवन में आना पड़ा
अक्षम्य मेरा अपराध, फिर भी विनय करता भैया से आज
मेरे प्राणों से प्रिय भैया, कर सकेंगे क्या आप मुझे माफ ।

(170) गले लगा, आँसू पोंछते बोले बड़े भैया राम , आह !
मेरे प्रिय अनुज, किस बात की मांगते हो क्षमा
मुझे सुहाना वन सुहाता, खुद ही मैं यहाँ आया
अपनी इच्छा से अवध का भार तुम्हें दे डाला ।

(171) मत मानो खुद को अपराधी, तुम ही मेरे प्रिय भाई सदा
बोल कर तीनों माता, कुलगुरु वशिष्ट को प्रणाम किया
पश्चाताप में मंझली माता, फफक पड़ी राम को, गले लगा
कौशल्या, सुमित्रा भावविह्वल दोनों पुत्रों, पुत्रवधु के दर्शन पा ।

राम-भरत मिलाप वन में

(172) दूर शत्रुघ्न को देख आँसू बहाते, राम का दिल तड़पा
मत रोओ यूं बच्चे जैसे, कह अनुज को गले लगाया
लक्ष्मण, सीता ने भी झुक-झुक लिया आशीर्वाद सबका
ममता प्रेम की छैया में, बोले लक्ष्मण कैसे हैं हमारे पिता ।

(173) संयमित स्वर वशिष्ट का,नहीं रहे इस संसार में तुम्हारे पिता
चीखे, सहमे चित्कारे राम, गुरुदेव ऐसा नहीं हो सकता
विलाप करते बोले, छोड़ गए हाय ! हमें अनाथ अकेला
अंतिम दर्शन भी न कर पाया हाय कैसा!जग में मैं अभागा ।

(174) जीवन भर जो राजा , पुत्रों के लिए रहा तरसा
अंत समय था, पुत्र विहीन बिलकुल अकेला
बोले गुरुदेव, पुनर्जन्म का फल उन्होंने है निभाया
अपना लो सत्य तुम भी, जैसा हमने उसे स्वीकारा ।

(175) हो गया मैं पितृविहीन बोले राम, अश्रु बहाते
भावविह्वल बन कर भाइयों को गले लगाते
धीरज रखो, बोली माँ कौशल्या, बेटे राम से
खुद शांत रह,सबको करो शांत अपनी सहजता से ।

(176) हाथ जोड़ माता कैकयी बोली, पुत्र कर दो मुझे माफ
मैं दु:खों की जड़,मेरे कारण हुए तुम सब हाय अनाथ
है अक्षम्य भूल मेरी,कर लो चाहे जितना मेरा तिरस्कार
माफी मांगती तुम सब से,वापस अवध को चलो आज ।

(177) मत मानिए खुद को दोषी माता, बोले राम
यही रह पूरी करेंगे प्रतिज्ञा न कीजिए चिंता आप
हमें आप से नहीं कोई शिकायत ,हे पूज्य मात
यही है हमारा धर्म, कर्म, मत होइए आहत आप ।

(178) एकांत पा लक्ष्मण ने उर्मिला से ,किया प्रेम का इजहार
संकोची उर्मिला बोली नाथ, प्राण तो ये सदैव आपके पास
हाड़-मांस शरीर संग बस मिलने आयी यहाँ तक आज
बोले लक्ष्मण,युगों तक याद रखेगा संसार, ये अद्‌भुत त्याग ।

(179) न सिर्फ त्याग, अपितु किया तुमने इच्छाओं का बलिदान
नि:शब्द भी गा उठे, कैसा तुम्हारा प्रेम महान !
बोली उर्मिला स्वामी, ये संकल्प है चौदह वर्षों का
सेवा की ज्योत,प्रेम के तेल से,करेगी ये अवधि प्रकाशमान ।

(180) दो दिन बिताए माताओं, अवध वासियों संग, वार्त्तालाप में
बोले वशिष्ठ हुआ समय, जाना होगा अब हमें, अवध में
राम भैया को ले जाने की, जिद पकड़ी थी इधर भरत ने
न हो रहे थे वो तैयार, राम भैया को छोड़ अवध जाने में ।

(181) समझाया राम ने, संभाल राज-काज होगे न अलग तुम मुझसे
तुम रहोगे मेरे ही अनुज, मेरे प्रतिनिधि, कर राज-काज धैर्य से
विश्वास दिलाता हूँ, खुद को तुम अलग न पावोगे मुझसे
हूँ मैं , कितना भाग्यशाली इस जगत में, तुम जैसा भाई पा के ।

(182) बोली कैकयी, पश्चाताप के आँसू मन ही मन पीते
हूँ मैं , सब दु:खों की जड़, माफ कर दो मुझे दिल से
लौट चलो वापस, मेरे पापों का फल , भरत को न दे
भुगतुंगी मैं अपनी करनी, रह अकेले इस सघन वन में ।

(183) मत कातर बनो मंझली मां, खुद को इसका दोषी मान
अन्तर नहीं जन कल्याण दायित्व, राज्य का,उठाए भरत या राम
बिना आधार न करो हठ, भरत अपनाओ राज-काज सत्कर्म मान
किन्तु भरत थे अडिग, न तैयार थे सुनने को कोई भी बात ।

(184) बीहड़ जंगल में खत्म करना है ,राक्षसों का आतंक, बोले राम
आखिर बड़े भैया के मौन का, अनुज भरत ने दिया सम्मान
विनीत भरत, चौदह वर्ष बाद तो अपनाओगे राज गद्दी की शान
हामी होते ही कहा, आपकी पादुकाएं सिंहासन का रखेगी मान ।

(185) रख कर इसे सिंहासन में , मानूँगा आपको राजा
करूँगा सारा राजकाज, बन अनुज मैं आपका
देख भरत की युक्ति संतुष्ट थे , गुरुदेव एवं सारी प्रजा
अभिभूत थे राम, देख प्रेम अनुज का ,जो था सच्चा ।

(186) पादुका संग आए भरत, भैया-भाभी ने किया सबको विदा
लक्ष्मण के नैनों में ,अब तक थी उर्मिला की मौन उदासीनता
होठों ने ली जगह मुस्कान की, जो थी संग उनके सदा
किया दिल मजबूत, मग्न हुए करने, भैया-भाभी की सेवा ।

पादुका ग्रहण करते भरत

(187) कुछ दिन गुजार चित्रकूट में, चले राम दूजी जगह परिवार संग
दण्डकारण्य, जो था घनघोर जंगल का एक रमणीय अंग
कहा राम ने हैं वनवासी, हमें यादों का नहीं चढ़ाना रंग
चित्रकूट में स्वजनों की याद अवध सा कराता था भ्रम ।

(188) पहुँचे अत्रि आश्रम, किया प्रणाम सबने विवेकी महर्षि को
पुत्र-सम मान ऋषिवर ने पास बैठाया राम-लक्ष्मण को
कहा पुत्री सीता से, पत्नी अनुसूया से अन्दर मिल आने को
बुढ़ापे में है विवश,बोले ऋषिवर असमर्थ यहाँ तक आने को ।

(189) बड़े प्रेम से मिले सब , ऋषि पत्नी माता अनुसुया से
ले आशीर्वाद ऋषि दम्पति का चल पड़े थे वे आगे
न स्वीकारा वहाँ रहने का आग्रह अन्य ऋषियों के कल्याणार्थ में
क्योंकि विकट राक्षसों का संसार था, घनघोर दण्डकारणेय में ।

(190) घनघोर जंगल में चलते, सामना हुआ उनका कई राक्षसों से
उन्हें मारते प्रवेश कर चुके थे, तीनों घनघोर दण्डकारण्य में
संहार किया 'विरोध' राक्षस का, न मरता जो किसी शस्त्र से
किया शापमुक्त उसे, मारा गढ़े में डाल, सांसों के घुटन से ।

(191) असंख्य आश्रम, ऋषिगण मिलते गए, बीहड़ जंगल की राह में
सबका प्रेम स्वीकारते, आशीर्वाद लेते ,बढ़ते गए वे वन में
सुतीक्ष्ण मुनि का आतिथ्य भी स्वीकारा राम ने अपनी यात्रा में
जो चले थे साथ, पथ-प्रदर्शक बन, मुनि अगस्त्य के आश्रम में ।

(192) अगस्त्य जानते थे , कथा-वीरता राम की, ताड़का के विनाश की
इसलिए की चर्चा, राक्षसों के बल रहस्य उनके नर-संहारों की
रावण के बल, धार्मिक वृत्ति, ज्ञान विद्वता संग उनके अवगुणों की
किसी की सिद्धि, तप, ज्ञान न देख सके ऐसी राक्षसी वृत्ति की ।

(193) वो रावण है धार्मिक किन्तु,ऋषियों का दुश्मन, राक्षसों का सिरमौर
विचार कर श्री राम बोले,भला शक्तिशाली रावण आखिर है कौन
हम भी मिलना चाहेंगे उससे, भापेंगे उसकी शक्ति बन कर मौन
कर्म-धर्म की ध्वजा फहरा, उसके बल को यथाशक्ति करेंगे गौन ।

(194) बोले ऋषिवर ,बलशाली ही नहीं, है वो अत्यंत छली
सावधानी से तुम्हें करनी होगी मारने की हर युक्ति
बोले राम , आपके आशीर्वाद-तप संग लगाकर बुद्धि
नाश करूँगा रावण का , और उसकी हर दुष्ट प्रवृत्ति ।

(195) दिखा पथ आगे जाने का दिया आशीर्वाद अगस्त्य ने
बताया शुभ स्थल रहने का, गोदावरी तट पंचवटी में
गोदावरी तट पर बनायी मनोरम कुटिया लक्ष्मण ने
भाव-विभोर राम-सीता देख , भ्रातृप्रेम लक्ष्मण में ।

लक्ष्मण, शूपर्णखा की नाक काटते हुए

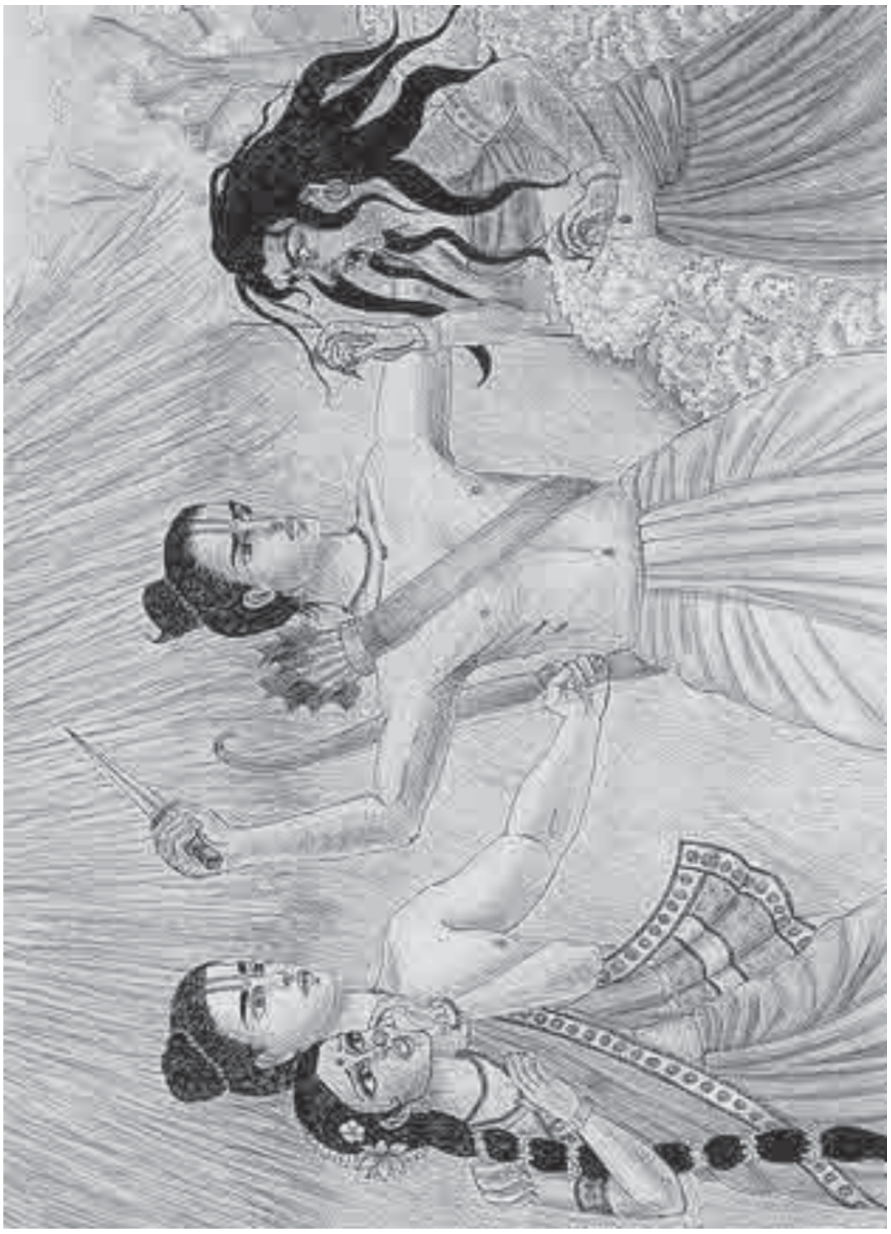

(196) पंचवटी की सुन्दरता का आनन्द ले रहे थे राम-सीता
इतने में घने जंगल से आयी, रावण की बहन शूर्पणखा
चुम्बक की तरह खींचती आयी ज्यों ही राम का रूप देखा
संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मैं, बोल शादी का प्रस्ताव रखा ।

(197) मुस्कुराए राम, सुनते ही गुस्से से तमतमा उठी सीता
उपहास किया , मुझसे व्याह ! इस सौत को होगा सहना
कर लक्ष्मण की ओर इशारा, बोले है वो मेरा भाई अकेला
न सौतन, न दूजा डर, जो यही प्रस्ताव तुमने वहाँ रखा ।

(198) सोचा सूर्पणखा ने नहीं रूप में छोटा भी बड़े-से कम
रूप का अवतार खुद को मान, पहुँची वो लक्ष्मण तक
रखा वही प्रस्ताव , आँखें मटका-मटका निर्लज्ज बनकर
सोचा हो जाएगा, लट्टू मुझपर ,मेरा रूप निहार कर ।

(199) पहले तो समझाया लक्ष्मण ने, फिर उसे फटकारा
न मानने पर गुस्से से, शूर्पणखा का नाक काट डाला
रोती बिलखती पहुँची खर भैया तक, गुस्से में फुंकारा
रोती -फुंकारती उससे लक्ष्मण की, करतूतों को सुनाया ।

(200) हिम्मत इतनी इन दोनों मानवों की, भाई खर तमतमाया
समझे खुद को बलशाली, वध ताड़का का क्या कर डाला
अभी बोटी-बोटी काट लाता हूँ, तुम्हारी चरणों में मेरी बहना
इनके रक्त से स्नान कर, अपमान का बदला तुम ले लेना ।

(201) खर दूषण राक्षसी सेना संग, कुटिया की और लगे आने
सीता की सुरक्षा लक्ष्मण को सौंप, राम पहुँचे अकेले लड़ने
समझा खर, ये अकेला क्या करेगा, दूजा भागा है डर से
किंतु किया धराशायी खर-दूषण को, श्री राम के वाणों ने ।

(202) हलचल मच गयी, समस्त राक्षसी सेना, एवं उनके खेमें में
वृतान्त सुनाने गया सेवक अकम्पन, रावण के चरणों में
हुंकार उठे रावण, ऐसी हिम्मत किसकी, समस्त ब्रह्माण्ड में
नहीं जानते, अग्नि सूर्य जला भस्म कर सकता मैं पल में ।

(203) उन मानवों ने नहीं मारा उन राक्षसों को, मारी है मेरी प्रतिष्ठा
कहा उसने अकम्पन से, जल्दी बताओ मुझे उसकी व्यूह रचना
कितनी बड़ी है सेना ? शामिल उसमें थे कितने देवी-देवता
सेवक बोला कांपता, नहीं कोई सेना, था वो युवा अकेला ।

(204) सुना, संग उसके है भाई और उसकी मनमोहक पत्नी यौवना
परम सुन्दरी, फीकी लगे उसके सामने अप्सरा, देव कन्या
प्रणय निवेदन संग गयी ,अनुज के पास हमारी बहन सूपर्णखा
इसी कारण हुई खर, दूषण, सूपर्णखा की युवान द्वारा हत्या ।

(205) दिया सुझाव अकम्पन ने, अगर होए अपहरण उस नार का
अद्वितीय सुन्दरी पत्नी बिना, टूट जाएगा वो मानव बन अकेला
विरह में, शोक को समर्पित अपनी प्राणों को यूँ ही गंवा देगा
हमारा बदला उससे लेने का अपने आप ही पूर्ण हो जाएगा ।

(206) कहा रावण ने वाह ! है ये बहुत ही अच्छी युक्ति
किंतु पूरक राम-सीता एक दूजे के, है उनमें अपूर्व भक्ति
बहुत सतर्कता से, इस षडयंत्र में डालनी होगी अपनी बुद्धि
अतः अपहरण की पूरी रचना बनाऊँगा मैं, लगा पूर्ण शक्ति ।

(207) इतने में नमक मिर्च लगाने आयी बहन शूर्पणखा
आते ही किया बखान राम-लक्ष्मण की सुन्दरता का
सुन्दरी, रूपवती, अद्वितीय राम -पत्नी सीता का
काश होए वो तुम्हारी पत्नी,भाई तुमने तब ब्रह्माण्ड जीता ।

(208) रावण ने बहन शूर्पणखा को प्रेम सहित दिया आश्वासन
और पहुँचा अपने परम मित्र मारीच के पास
बता अपनी सम्पूर्ण युक्ति , मांगा उसका साथ
है असंभव बोला मारीच, नहीं मानना मुझे यह सुझाव ।

(209) क्रोधित रावण ,कुछ भी न सुनने को था तैयार
बोला बनना पड़ेगा तुम्हें स्वर्ण मृग वरन लूंगा मैं प्राण
मृग आकर्षण देख, विचलित होगी कोई भी नार
सोचा मारीच ने, रावण से अच्छा, राम द्वारा जाए प्राण ।

(210) षडयंत्र अनुसार स्वर्णमृग रूप मारीच ने अपनाया
कुटिया की ओर, नन्हीं दौड़ करता वो आया
बिन रही थी पुष्प सीता, शिव पूजा वास्ते जहाँ
विचलित हुई देख रूप मृग का ,एक नशा सा छाया ।

स्वर्ण मृग निहारते राम-सीता

(211) बोली नाथ कितना सुन्दर स्वर्णमृग, उस पर चाँदी सी बूँद
ले जाऊँगी इसे अपने कनक महल में मान अपना अंग
किसी भी तरह ले आइए, जाएगा अयोध्या ये मेरे संग
मानो सीता बनी नन्ही, बाल सुलभ हठ का चढ़ा था रंग ।

(212) सरल भोले श्री राम बोले ,अपनी पत्नी सीता से
जाता हूँ अभी ही पीछे उस आकर्षक स्वर्णमृग के
हो नहीं सकता ये प्राकृतिक मृग, बोले लक्ष्मण,भैया से
लगता यह अद्‌भुत रूप, है किसी मायावी राक्षस के ।

(213) है यह जरूर राक्षस मारीच, आया ले रूप मृग का
मुनि शरभंगा के आश्रम से, जो बच कर था निकला
बोले राम, तब तो अवश्य वध करूँगा मैं इसका
नहीं तो वातापि की तरह, छल करेगा माया से सबका ।

(214) कौन है यह वातापि ,पूछा लक्ष्मण ने , प्रभु राम से
वह मायावी, कपटी, छल लेता सूक्ष्म रूप बना माया से
ऋषि मुनियों के शरीर में, प्रवेश करता भोजन से
और मार डालता उन्हें, विकृत रूप अन्दर ही, कर के ।

(215) फिर कैसे मरा वो, उत्सुकता वश पूछा भैया से, लक्ष्मण ने
बोले राम, ऐसे ही घुस गया था ऋषि अगस्त्य के शरीर में
विकराल शरीर अन्दर बनाना चाहा, ऋषि को मारने पेट में
पहचाना उसे ऋषि ने, और पचा लिया उसे उसी पल में ।

(216) देना चाहता मैं यही सबक मारीच को, कहा श्री राम ने
निकल पड़े ले धनुष वाण, रखना ख्याल सीता का कह के
इधर हुए दूर राम, मायावी राक्षस ने लगायी आवाज सीते, सीते
जाओ संकट में हैं तुम्हारे भाई, चिन्तित सीता बोली लक्ष्मण से ।

(217) नहीं हो सकते वो मुसीबत में, ऐसा मेरा अटूट है विश्वास
है भैया की आज्ञा, आपकी रक्षा हेतु मुझे रहना आपके पास
फिर भी न मानी सीता बोली, स्वर था उनका आर्द्र कितना
है मेरा आदेश ,जाओ भाई के पास, करने मारीच का नाश ।

(218) कैसे छोड़ दूँ आपको अकेले यूं ही, बीहड़ जंगल में
कैसे तोड़ दूं भैया की आज्ञा, आपकी इस शंका में
मत करिए मुझे विवश, गिड़गिड़ाए लक्ष्मण वेदना में
चाहते नहीं वो वापस आए, विफर पड़ी सीता गुस्से में ।

(219) कहीं तुम्हें इच्छा तो नहीं ,मुझे अकेले पाने की
और क्या हो सकता , मेरी बात न मानने की
तड़प उठे लक्ष्मण, जो माँ से भी ज्यादा है सम्मानित
कर सकती माँ समान भाभी ,बात अपने बेटे से ऐसी ।

(220) मैं जाऊँ नरक में, मेरा जीवन है भैया के ,चरणों में
रो पड़े लक्ष्मण, बोली सीता, नहीं हूँ मैं भी आपे में
जब तक आ नहीं जाते तुम्हारे भैया उसी रूप में
अटकी रहेंगी मेरी सांसें, उनके ही पगध्वनि में ।

(221) करो नहीं मेरे प्राणों की चिन्ता, वो है तुम्हारे भैया में
मान आदेश जा रहा हूँ मैं, बोले लक्ष्मण आखिर में
किन्तु खींचे जा रहा हूँ एक रेखा, आपकी रक्षा में
जिसे पार नहीं करना किसी भी संजोग, अवस्था में ।

(222) वापसी में राम ने देखा, उसी दिशा में जाते लक्ष्मण को
विह्वल हो पूछा, किस के भरोसे छोड़ा अकेले सीता को
बोले विवश अनुज, किया भाभी ने मजबूर यहाँ आने को
विचलित थी सुन आपकी वाणी लक्ष्मण, आपने पुकारा जो ।

(223) बोले राम , थी वो आवाज, उस मायावी राक्षस की ही
जिसने निकाला मुझ जैसा आवाज मेरा तीर लगते ही
तुम्हें सीते को न छोड़ना था अकेला, चाहे आशंकित रहती
दु:खी लक्ष्मण बोले, किया मजबूर भाभी ने आवाज सुनते ही ।

(224) अकेला देख सीता को कुटिया में, साधु वेश में रावण आया
'भिक्षाम देहि' के स्वर से, सीता माता को भिक्षा देने उकसाया
था चतुर सयाना, लक्ष्मण रेखा का भेद भी था वो जानता
कहा इस रेखा के पार ही स्वीकारूँगा देवी, तुम्हारी भिक्षा ।

(225) ज्यों ही सीता ने मजबूरन पार किया ,लक्ष्मण रेखा को
त्यागा साधु वेश, राक्षस बन दबोचा मासूम सीता को
छुड़ाने का भरसक प्रयत्न कर, पूछा तुम कौन हो बताओ
हूँ लंकापति रावण, आया तुम्हें पटरानी बनाने को ।

रावण साधु वेश में

(226) रोती बिलखती सीता पुकारती रही, राम-लक्ष्मण को
देख जटायु ने, भरसक किया प्रयास, रावण को रोकने को
हुआ युद्ध, रावण ने कर उसे लहुलुहान उड़ाया विमान को
फेंकती रही सीता आभूषण,दिखाने पथ अपने श्री राम को ।

(227) बोले रावण व्यर्थ न बहाओ आँसू, कोई न आएगा यहाँ
सोने की लंका में रखूँगा मैं तुम्हें, अपनी रानी बना वहाँ
सारी रानियां होंगी दासी , तुम्हारा ही हुक्म होगा सारा
आएँगें मेरे आर्य निर्ल्लज,विफरी सीता मैं हूँ एक पतिव्रता ।

(228) देख सीता को , अपने सारे आभूषण फेंकते
पूछा रावण ने , क्या मिलेगा उसे यूं नष्ट कर के
मुझ तक आने का पथ , जानेंगे इससे आर्य मेरे
दुष्ट, अन्त है तुम्हारा निश्चित,अभी भी मुझे छोड़ दे ।

(229) बोला रावण हूँ नहीं मैं भी निपट, गंवार, जानवर या जंगली
हूँ शिवभक्त, विद्वान जबकि तेरा राम है नासमझ वनवासी
बोली सीता, हूँ कृतसंकल्प अपने राम आर्य की सहभागी
साथ हर व्रत में सम्मिलित, संभल जा अभी भी वो पापी ।

(230) नहीं तोड़ूंगा व्रत तुम्हारा, रख तुम्हें अपने भवन में
रखूँगा तुम्हें नगर के बाहर दूर अशोक वाटिका में
ताकि ढूंढ़ते जब भी आए तुम्हारे आर्य तुम्हें लेने
मार उसे सफल होऊँगा मैं, तुम्हें पटरानी बनाने में ।

(231) मैं शिवभक्त अपनी तरफ से दूंगा तुम्हारे व्रत का मान
नगर में रह कर भी, घर होगा तुम्हारा ये उद्यान
यहाँ की संरक्षक होनी चाहिए सिर्फ स्त्रियाँ, बोली सीता
बोले रावण, निभाएगी ये ,मन्दोदरी की मुख्य दासी त्रिजटा ।

(232) होगा यह नियंत्रित अभियान सिर्फ एक वर्ष का
इसी बीच न आए तुम्हें छुड़ाने जो आर्य तुम्हारा
बिना शर्त लंका की पटरानी तुम्हें होगा बनना
विमान में था वीभत्स हट्टाहास लंकपति रावण का ।

(233) इधर कुटिर पर न देख सीता, अधीर हुए राम
सीते-सीते विलाप करते किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उठे राम
लक्ष्मण कहाँ होगी मेरी सीता?विलाप करने लगे राम
विह्वल हुए लक्ष्मण देख स्थिति, खुद को दोषी मान ।

(234) मैं ही हूँ दोषी बोलते ,असह्य तड़प थी शब्दों में
एक न चली मेरी, भाभी के आदेश के समक्ष में
सुरक्षा हेतु, थक हार बनायी थी लक्ष्मण रेखा मैं ने
समझाया था न पार करना उसे, किसी भी स्थिति में ।

(235) मुमकिन नहीं जानवर या राक्षस मारे ऐसा , होता नहीं आभास
कुटीर के अंदर,बाहर छीना झपटी के निशान नहीं, आस-पास
कहीं से भी ढूंढ़ लूंगा मैं, हो चाहे समुद्र, पृथ्वी या आकाश
हो जहाँ भी, हैं वे सुरक्षित मैं उन्हें पाए बिना न लूंगा विराम ।

(236) ईश्वर करे, निकले यह बात सच्ची, गहन उदासी में बोले राम
रह न सकती थी जो मेरे बिना, एक पल भी सुबह-शाम
भीषण दु:ख में भी सहायिका बन, इस जीवन को माना संग्राम
ऐसी सती विदेहराज कन्या का, हो नहीं सकता ऐसा परिणाम ।

(237) फफक उठे राम, तुम बिन कैसे जाऊँगा मैं अकेले अयोध्या !
किस मुँह से करूँगा, राजा जनक, कौशल्या माता का सामना
मैं तो तुम्हारे वियोग में , यूँ ही तुम्हें याद करते मर जाऊँगा
कहेंगे परलोक में पिता, पूरी न कर पाए तुम, मेरी प्रतिज्ञा!

(238) कहीं लुका-छिपी तो नहीं खेल रही,बोले राम रख फिर आशा
अशोक शाखाओं मे छिप कहीं इन्तजार तो नहीं कर रही मेरा?
बस उनका सीते-सीते विलाप और संग थी अंसुवन की धारा
सोचा कायर, पराक्रमहीन न जाने क्या कहेगा ये जग सारा ।

(239) धीरज देते बोले लक्ष्मण ,असंयमित होते बड़े भ्राता से
हैं वो सुरक्षित, ढूंढ़ निकालेंगे हम उन्हें ,हर प्रयत्न से
है भाभी मेरी जीवित, कहती मेरी आत्मा पुकार-पुकार के
विलाप-निराशा छोड़ें भैया, आशा- संयमता धारण कर के ।

(240) चलते-चलते एक धीमी आवाज ,आयी कहीं दूर से
हाय राम ! राम-राम ! कहाँ जाते , कांपते स्वर से
पास जाकर देखा, एक बड़ा पक्षी लहुलुहान था युद्ध से
आश्चर्यचकित हुए दोनों भाई , राम-नाम संबोधन से ।

घायल जटायु

(241) पास जाने पर परिचय दे खुद का नाम जटायू बताया
मिले थे , दण्डकारण्य में प्रभु से ,ये अवगत कराया
देख कटे पंख, घायल अवस्था पूछा किसने की ये दुर्दशा
बेाला जटायु, रावण, जिसके कब्जे में है आपकी व्याहता ।

(242) देखते ही देखते , प्राण पखेरू हुए वीर जटायु के
पूर्ण किया अंतिम संस्कार दोनों ने, आखरी नमन कर के
नतमस्तक थे ,महान आत्मा के प्रति दोनों भाई आदर से
गवाएँ जिसने प्राण निस्वार्थ ,एक सत्कर्म में लीन हो के ।

(243) असमंजस में थे दोनों, पहल की शुरुआत हो, किस दिशा से
तभी कवध राक्षस का आक्रामक सामना, किया सतर्कता से
किया उसका उद्धार जो था पीड़ित मुनियों के श्राप से
शापमुक्त हो, दिए बहुमूल्य सुझाव, उसने सुन्दर रूप धर के ।

प्रभु शबरी के बेर खाते हुए

(244) युक्ति बताई कवध ने ,सुग्रीव से मिल युद्ध योजना की
हंसे लक्ष्मण वाह क्या खूब ! बानर से मदद लेने की
देख पायजेब ,गहने, हुई अनुभूति सीता की दूरदर्शिता की
थी कितनी सुन्दर बुद्धि, उन्हें सही राह स्पष्ट करने की ।

(245) लक्ष्मण की हंसी का जवाब, कंवध मार्ग बताते बोले
बन्दर भले मानव नहीं , किन्तु उसे न छोटा तोले
है यह जीव जो बेरोके टोके आ जा सके मानव से पहले
चाहे हो स्वर्ग का मंदराचल या पाताल,ये कहीं भी हो ले ।

(246) पहुँचे मंगत आश्रम, कंवध के बताए हुए मार्ग से
जहाँ बैठी थी शबरी दो राजकुमारों की राह में कब से
बोली जानती हूँ , मेरा उद्धार होगा आपके दर्शन ही से
किन्तु हो अभी भूखे, खाओ मेरे बेर मीठे-मीठे प्रेम से ।

(247) बेर चखती, मीठे प्रभू को देती, बड़े सहज प्रेम भाव से
श्री राम बेर स्वीकार खाते, स्वाद लेते उतने ही स्नेह से
देख लक्ष्मण बोले, भैया झूठे बेर आप हैं खाते
जवाब दिया शबरी ने, है यह छांटने की विधि,नहीं झूठे ।

(248) भूख मिटा, उठी दिखाने मंगत ऋषि का निवास स्थान
जहाँ गायत्री मंत्र करते, ऋषि पहुँच चुके थे स्वर्ग धाम
वहीं पूजा वेदी लिपती,राह देखती थी शबरी,कब मिलेंगे राम
किया उद्धार प्रभु ने ,शबरी का उसके सत्कर्मों के साथ ।

(249) अंतिम प्रणाम प्रभु को कर, शबरी हुई समर्पित अग्नि में
देखते देखते वृद्ध भीलनी, हुई रूपमती युवा सी अग्नि में
यह कैसा अलौकिक रूप ! सआश्चर्य कहा लक्ष्मण ने
बोले राम, स्वर्ग मिला, यह अच्छे कर्मों की वजह से ।

(250) कर स्नान-पूजा चले दोनों भाई ऋष्यमूक पर्वत सुग्रीव से मिलने
हनुमान, नल-नील, जामवन्त से बातें करते, देखा उन्हें सुग्रीव ने
देख दो सुन्दर धनुर्धारियों को, अपनी ही दिशा में आते बोले वे
इन्हें वनवासियों सा वस्त्र पहना निश्चय ही भेजा है बाली ने ।

(251) जाता हूँ उनसे मिलने, वेश बदल कर बोले हनुमान
अगर जाना ,हैं वे दूत बाली के,हर लूँगा वही उनके प्राण
ली आज्ञा सुग्रीव से और किया हनुमान ने वहाँ प्रस्थान
पाकर परिचय हुए आश्वस्त और किया प्रभु को प्रणाम ।

(252) परिचय सुन प्रसन्न हुए सुग्रीव भी, किया अभिवादन राम का
होंगे आप हमारे सहायक, मुझे हो रहा था आभास सा
आप मनुष्य, मैं बानर फिर भी बढ़ाता हाथ, मित्रता का
चाहे जाएँ मेरे प्राण, दूंगा हर परिस्थिति में साथ आपका ।

(253) बोले राम हाथ ही क्यों ? और हृदय से दोनों गले मिले
बनाता हूँ तुम्हें मित्र आओ, अग्नि को साक्षी हम कर लें
आश्वस्त सुग्रीव पाकर मित्र राम, बाली से बदले के लिए
मन ही मन बुदबुदाए, बताऊँगा हश्र,जो भाई की पत्नी ले ।

(254) सोचे लक्ष्मण, समान दु:ख वाले समझते एक दूजे को सदा
याद कर कहा सुग्रीव ने, कुछ समय पूर्व की हुई कथा
स्वर्ण रथ पर जबरन एक नारी को ले जाने की व्यथा
फेंक रही थी आभूषण, होगी वही आपकी पत्नी प्रियंवदा ।

(255) एकत्र कर रखे हैं हमने , वे आभूषण सारे के सारे
विह्वल हो दौड़े दोनों भाई, बिना एक पल भी गवांए
वही बाजूबंद, वही कंठमाल, वही सुनहरे जूड़े के गजरे
आहत लक्ष्मण देख बिछवे, करते जिनका दर्शन नित पांव छूते ।

(256) विह्वल राम, करने लगे विलाप मानो हों साधारण मानव
ढाढ़स देते बोले सुग्रीव, वीर पुरुष यूँ करते नहीं संताप
ढूंढ़ निकालेंगे उन्हें, है हमारी भी ये जिम्मेदारी युवराज
छोड़ेंगे नहीं पृथ्वी का कण-कण, समुद्र-आकाश या पाताल ।

(257) बोले सुग्रीव ,आप जैसा मित्र पाकर मैं धन्य हुआ
बताया राम को कारण बड़े भैया बाली से मन मुटाव का
छिनी मेरी पत्नी , युवराज भी मुझे न होने दिया
पत्नी हरण का दु:ख , जानेगा कौन आपसे ज्यादा ।

(258) मैं भी लक्ष्मण भैया जैसा,आदर देता था अपने बड़े भैया को
एक समय दुन्दुभि बलशाली राक्षस ने ललकारा ,बाली को
बाली ने उसे मार , फेंका शव ऋषिआश्रम की ओर को
गुस्से में मुनि ने दिया श्राप, शव के फेंकने वाले को ।

(259) आश्रम से दो योजन पास भी आएगा जो वो मारने वाला
होगी उसकी तत्काल मृत्यु, श्राप से अदभुत भय था फैला
माफी मांगी बाली ने, किन्तु शापमुक्त कैसे हो सकता था भला
इसलिए भयमुक्त बन बाली से, मैं रहता इस विस्तार में अकेला ।

(260) संतुष्ट न थे राम, पूछा कारण, बाली से उसकी दुश्मनी का
दुन्दुभि का भाई मायावी ने एक समय था उसे ललकारा
उससे लड़ने वगैर सैनिकों के, बाली अकेले वन को भागा
दौड़ा मैं भी उनके पीछे, जान भाई गया था वहाँ अकेला ।

(261) देखते ही देखते बड़ी गुफा में मायावी राक्षस घुसा
उस पर बड़ा पत्थर रख मैं ने उसे बंद किया
उसे हटा बाली गया अन्दर, बोला करना मेरी यहीं प्रतीक्षा
न आया वो,महीनों बाद भी,मैं भूखा प्यासा भला क्या करता ।

(262) वापस अपने घर आ, संभालने लगा मैं राज्य बन राजा
एक दिन आ पहुंचा बाली, क्रोधाग्नि से धधकता थरथराता
न सुनी कोई बात, विश्वासघाती मुझे मान, मारने को दौड़ा
जान बचा, कैसे भी इस शापित सुरक्षित जगह में मैं आया ।

(263) सारी बातें सुन राम बोले , विवेकहीन कार्य किया है बाली ने
करूँगा तुम्हारी मदद, बाली को मार तुम्हारी पत्नी तुम्हें सौंपने में
किंतु बाली है अत्यंत बलशाली, बोला सुग्रीव अविश्वास में
हराया रावण को भी था एक युद्ध में , हुए थे मित्र बाद में ।

(264) राम के कहने पर सुग्रीव ने युद्ध के लिए ललकारा बाली को
किंतु दोनों थे एक जैसे, फर्क न कर पाए राम ,दोनों में बाली को
पुनः सुग्रीव के गले में डाल हार, शांत किया सुग्रीव के क्रोध को
फिर जब ललकारा सुग्रीव ने,मार गिराया पीछे से,राम ने बाली को ।

सुग्रीव-बाली युद्ध

(265) पेड़ों के पीछे छिप राम ने बाली पर मारा था तीर
बेसुध हो गिरे बाली बोले, क्या किया ये अयोध्या वीर!
समझता था मैं तुम्हें आदर्श, विवेकी, धर्मज्ञ, नीतिशील
न मैं दुश्मन तुम्हारा ,व्यवहार क्या ये शोभनीय था धर्मवीर ?

(266) मुझे छलने के लिए आपने बनाया यह वेश वो धर्मध्वजी
आप सुसंस्कृत सभ्य मनुष्य, मैं साधारण वानर वनवासी
काश लड़ते सामने से, मैं भी दिखाता तुम्हें अपनी शक्ति
यमदेवता के दर्शन करा जंगल में, करता तुम्हारी भी छुट्टी ।

(267) बोले लक्ष्मण, ऐसे शब्द बोल अंत समय ,मत करो अहंकार
कहा राम ने, सुग्रीव की बात सुने बिना,लेने चाहे उसके प्राण
छोटे भाई की पत्नी का सतीत्व नष्ट करना, है घोर अपराध
इसलिए यह दंड निश्चित था तुम्हारा, विष वाण का हार ।

(268) और फिर बोले राम, सुग्रीव है अब मित्र मेरा
मेरी पत्नी को ढूंढ़ने की, ली है इसने प्रतिज्ञा
अट्टहास किया बाली ने,जिस उद्देश्य खातिर किया वध मेरा
करता वह प्रतिज्ञा पूर्ण मैं, जो मुझसे तुम मित्रता करता ।

(269) बिना युद्ध के मैं ,पटक देता रावण को आपके पैरों में
जानते सब, दबा रखा था रावण को छ:महीने अपनी कांख में
दु:ख नहीं मुझे अपने मरने का, दु:ख है, आपने मारा धोखे में
काश मानता बात पत्नी तारा की, कहा था न जाओ क्रोध में ।

(270) बाली ने अपनी विजयी माला, पहनायी सुग्रीव के गले में
फफक उठे सुग्रीव देख भाई का प्रेम, उसे माला पहनाते
कहीं तारा को देख, बाली में जीने का मोह फिर से न जागे
इसलिए समझाया राम ने बाली को, जो किया था उसने ।

(271) विलाप करती बोली तारा, क्यों धोखे से मेरे पति को मारा
प्रत्युतर में राम, करते हैं सम्मान उसका, है बाली महान योद्धा
किन्तु अनीति के कारण ,उन्होंने ये मेरा दिया दंड है भोगा
विवेकी तारा,सिसकती बोली, धर्म का कार्य आपने कर दिखाया !

(272) दुःख की पराकाष्ठा में भी तारा ने, विवेक न छोड़ा था
एक अपशब्द सुग्रीव या राम को , न कहा था
किन्तु पति संग सती होने की जिद, सतीत्व अडिग था
नहीं छीन सकते जीवन विधाता से,राम ने समझाया था ।

(273) भ्रातृप्रेम सुग्रीव का बाली के, प्रति भी था महान
अंगद,तारा की दयनीय स्थिति ने भ्रातृत्व प्रेम में डाली थी जान
नहीं जी सकता मैं भी भाई बिन, त्यागूँगा आज मैं अपने प्राण
भाभी के स्थान चिता पर बैठ , आज पूर्ण करूँगा पश्चाताप ।

(274) कहा तारा ने सुग्रीव से, आप बाध्य हैं वचन संग राम से
दे नहीं सकते प्राण, यूं ही पश्चाताप के दो घूंट पी के
धन्य थी तारा! दु:ख के आवेग में भी अभिभूत, विवेक से
बोले राम, कोई न देगा प्राण, होगा अंतिम संस्कार विधि से ।

(275) बोले प्रभु, बाली थे महान वानर राजा, मेरे लिए भी थे पूज्य
होगा उनका अंतिम संस्कार यथायोग्य, सुनो सुग्रीव एवं अनुज
पूर्ण की सारी विधि सबने मिलकर,राजकाज फिर भी था अपूर्ण
सुग्रीव को राजा,अंगद को युवराज बना, धर्म की डाली थी नींव ।

(276) राजपद स्वीकार सुग्रीव ने संभाली गद्दी किषकिंधा की
चतुर्मास बाद हुई बात पुनर्मिलन व सीता खोज की
देखते-देखते बीत गया चतुर्मास जो आया समय पर ही
भूले सुग्रीव सारी बातें, चतुर्मास बाद वचन निभाने की ।

(277) राजसुख में लिप्त भूला सुग्रीव, प्रभु की प्रतिज्ञा को
मानवता के मूल्य, वचन की गरिमा निभाने को
क्रोधित लक्ष्मण हो उठे तैयार, सुग्रीव को मारने को
समझाया राम ने, क्रोध पर नियंत्रण,बनाता श्रेष्ठ मानव को ।

(278) पहुँच चुके थे लक्ष्मण, सुग्रीव महल के पास में
सकपका उठे सारे, यूं अचानक उसे देख महल में
तुरन्त गलती मान, तंग स्थिति भांपी, बुद्धिमान हनुमान ने
तारा संग लक्ष्मण की आवभगत करने पहुँचे वे द्वार में ।

(279) सुग्रीव भी पहुँचे आदर सत्कार करने, भांप अपनी गल्ती
कैसे स्वीकारे लक्ष्मण, परवाह नहीं जिन्हें राम के वचन की
बोले, जो भूले वचन, उससे बड़ा नहीं कोई अपराधी पापी
कृतघ्न, वध के योग्य ,नहीं परवाह जिन्हें मित्र के प्रण की ।

(280) स्थिति अनुरूप समझाया तारा ने, आप हो परम ज्ञानी
कैसे भूले सुग्रीव उपकार राम का ,हम जैसे तुच्छ प्राणी
यह प्रतिष्ठा, राज्य, पत्नी सब में है कृपा प्रभु राम की
हाँ चूक हुई जरूर, राजभोग में ,समय के मर्यादा की ।

(281) हनुमान तारा ने मिल, संभाला लक्ष्मण के क्रोध को
सुग्रीव के माफी के उठे हाथ, शांत करते रहे लक्ष्मण को
सेवक से जो होए भूल, कृपया माफ करें उस अज्ञानता को
अब तो न लेंगे चैन, जब तक ढूंढ़ न निकाले सीता मैया को ।

(282) प्रसन्नचित्त आश्वस्ति लक्ष्मण, आए पुनः राम भैया के पास
सुनाने लगे विदूषी, तर्कशास्त्री, व्यवहारकुशल तारा की बात
हनुमान के ज्ञान, विवेक एवं सुग्रीव की गल्तियों का एहसास
सुन आश्वस्त हुए राम, पुनः जागृत हुई वैदेही मिलन की आस ।

(283) आए सुग्रीव, श्री राम के पास, क्षमा-याचना-विनय के सहारे
सच्ची भावना लिए असंख्य वानर सेना संग राम के द्वारे
कराने लगे परिचय, अपने महानुभावों पराक्रमियों का राम से
मिलाया बुद्धिमान,दूरदृष्टिगामी,अनुभवी तारा के पिता सुषेण से ।

(284) रूमा पिता, अद्‌भुत वीर, आदरणीय रूमन जो हैं मेरे श्वसुर
लंगूर राजा गवाक्ष दूजे, गति में पवन, वीरता में पराक्रमी शूर
शल्य चिकित्सा के ज्ञानी हैं ये ,अश्विनकुमार द्वंद्व एवं मयंद
सुन्दर किष्किंधा रचयिता अग्निपुत्र नल-नील,वास्तुकला में निपुण ।

(285) इसके पहले कि जामवंत का सुग्रीव परिचय कराते राम से
बोले प्रभु जानता हूँ ऋक्षराज, हैं ये मानसपुत्र ब्रह्मा के
हैं ये ज्ञान के भंडार, और हथियार संकट-समय के
हर विपरीत परिस्थिति होगी पार, इनके सलाह मशविरा से ।

वीर हनुमान

जय श्री राम

(286) बोले जामवंत आकर सम्मुख सम्पूर्ण वानर सेना के
ध्येय हमारा, महारानी सीता को छुड़ाना रावण से लड़ के
साथ ही दोनों भाइयों की संपूर्ण सुरक्षा भी है हम पे
लिया जनक नन्दिनी ,खोज का निर्णय सब ने मिल के ।

(287) जाएगा कौन खोज पर ? प्रश्न था ये बड़ा जटिल
जामवंत अनुभवी पर वृद्ध, अंगद युवा पर अनुभव विहीन
बोले सुग्रीव ,किन्तु बलवान, वेगवान बुद्धिमान हैं हनुमान
पवनपुत्र, कार्य के धनी, जिन्हें कार्यपूर्णता का रहता भान ।

(288) सुग्रीव की इस बात पर ,लम्बी हामी भरी श्री राम ने
कहा हनुमान से, मुझे ज्यादा भरोसा दिखता तुम में
तुम मित्र ही नहीं सेतु हो, हम सबको मिलाने में
हँसे हनुमान, दूजों में अच्छाई देखना गुण है आपमें ।

हनुमान को सीता खोज में अंगूठी देते श्री राम

(289) अपनी माणिक जड़ित अंगूठी दी प्रभु ने , हनुमान को
देखते ही पहचानेगी जनक नन्दिनी तुरन्त हमारे नाम को
जामवंत के नेतृत्व में , थे तैयार सारे प्रस्थान को
दिया प्रभु ने आशीर्वाद, शुभकामना प्रेम से हर एक को ।

(290) नम्र प्रभु, इस उम्र में दे रहा कष्ट, है ये कितना योग्य
बोले जामवंत, इस परोपकार में आया काम, है ये मेरा सौभाग्य
पिता के हत्यारे को क्षमा कर, बालि पुत्र कर रहे उपकार
बोले प्रभु अंगद से, और दिल खोल दिया उसे आशीर्वाद ।

(291) पहाड़, गुफानुमा मार्ग से होते पहुँचे सारे एक सुन्दर मायावी उपवन में
मिली जहाँ देवी स्वयंप्रभा, इन्द्र अप्सरा हेमा की सहेली उस भवन में
हेमा संग वो भी आ पहुँची थी स्वर्ग से, इस मायावी नयनरम्य उपवन में
इन्द्र से शापित हेमा की थी मुक्ति, आएगें बहुत वानर जब इस गुफा में ।

(292) हेमा ने मय दानव के संसर्ग से ,जन्म दिया था एक पुत्री को
नाम था मंदोदरी, अपार सुन्दरी, गुणवती, विदूषी थी वो
मय दावन के पुत्र दुन्दुभी और मायावी मरे थे बाली के हाथों
देवराज इन्द्र ने कुपित हो मारा था मय दानव को अपने हाथों ।

(293) क्षुधा शांत कर, वानरों ने लेनी चाही जाने की देवी से आज्ञा
मुश्किल था उस मायावी महल-उपवन-गुफा से बाहर निकलना
पहुँची समुद्र तट वीरों की टोली, ले देवी स्वयंप्रभा की सहायता
किन्तु थे सारे हतोत्साहित, बीत चुका था जो उनका महीना ।

(294) क्या मुँह ले कर जाएंगे वापस, जो सीता का पता नहीं चला
इतने में जटायु के भ्राता सम्पाति से , हुआ साक्षात्कार सबका
जामवंत ने उन्हें , परिचय दे, वैदेही खोज का उद्देश्य बताया
सीता रक्षा हेतु रावण से,लड़ते जटायु वधकथा से अवगत कराया ।

(295) सुन कर दु:खी हुए सम्पाति,पूर्ण की भाई जटायु की अंत्येष्टि
रथ में जबरन ले जाते देवी की,साफ दिखी अब उसे आकृति
थी वो रामप्रिय सीता,ले जा रहे थे लंका की ओर बना बंदी
संतुष्ट थे हनुमान,क्योंकि गरुढ़ पुत्र की होती है सही दृष्टि ।

(296) निश्चित था, सीता जी थी रावण की नगरी लंका में
किन्तु समुद्र पार ? विकट प्रश्न था सबके मन में
सुझाया जामवंत ने, कहा प्रबल शक्ति है हनुमान में
पवन पुत्र, महाशक्तिशाली, अतुलनीय बल है जिसमें ।

(297) बोले जामवंत, था यह ब्रह्माजी का शाप तुम पर
भूलोगे अपना बल, याद नहीं कराएगा कोई जब तक
जो बचपन में , निगल सकता सूरज, उसे फल समझकर
उस बल शक्ति का अनुमान नहीं था , तुम्हें अब तक ।

(298) अपनी शक्ति का एहसास होने लगा शक्तिशाली हनुमान को
कर प्रणाम अंगद, जामवंत को, हुए प्रस्थान समुद्र पार करने को
मिली राह में सुरसा राक्षसी, बढ़ाया मुँह उसे खाने को
खुद को सूक्ष्म बना, चतुराई से निकल पड़े अपनी मंजिल को ।

(299) मेरु पर्वत ने करना चाहा , पवनपुत्र का अतिथि सत्कार
स्पर्श कर ,सादर नमन कर, चल पड़े हनुमान न किया विश्राम
राह में मिली सिंहकी राक्षसी, जिसका किया हनुमान ने संहार
इसी तरह पहुँचे लंका, सेविका लंकिनी पर किया मुष्टि प्रहार ।

(300) आश्चर्य में डूबे हनुमान देख, लंका की अदम्य सुन्दरता
घूमते-घूमते देखा एक घर, भक्ति में लीन एक रामभक्त का
आनन्द की तृप्ति संग परिचय दिया भक्त को अपना
थे ये भक्त विभीषण, सीता जी का पता उनसे ही पूछा ।

(301) देखते-देखते हनुमान पहुँच गए , शहर से दूर अशोक वाटिका में
देखा, जा रहा था रावण, पत्नी मंदोदरी संग,उसी सुन्दर उपवन में
आते ही, सीता माता को राम की इन्तजारी का, लगा देने उलाहने
"क्या अभी भी है आशा"भयग्रस्त राम,आएगा तुम्हें यहाँ से छुड़ाने ।

(302) पटरानी बना ,संसार के सारे सुख उड़ेल दूंगा तुम पर
बोली सीता चाहती नहीं, बुरा मंदोदरी का पल भर
वो बनी रहे पटरानी, मुझे विश्वास है अपने आर्य पर
आएंगे जरूर वो, ले जाएंगे मुझे बैठा कर पलकों पर ।

(303) बोली सीता, महल में न रख, तूने किया उपकार, दिया मुझे सम्मान
अहंकारी रावण फुंकारा, हूँ लंकेश, 'तुम' नहीं 'आप' बोल बढ़ाओ मान
इन्द्र-वरुण-वायु-अग्नि-पृथ्वी समस्त ब्रह्माण्ड, मेरे सामने हैं बेजान
कहूँगी पूज्य, श्रद्धेय इस उपकार के बदले, बोली सीता तुम रावण महान ।

(304) रावण दहाड़ा, नहीं आऊँगा मैं ,तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी बातों में
अब सिर्फ बचा एक महीना, नहीं कोई विकल्प तेरे पास में
हिम्मत हो तो आए तुम्हारा राम, छुड़ा ले तुम्हें यहाँ से आ के
बोली सीती, 'आएंगे जरूर' वे, उठती आवाज मेरी आत्मा से ।

(305) रावण के जाते ही निराश सीता बोली , त्रिजटा सेविका को
कैसे आएंगे इतनी दूर मेरे आर्य, यहाँ मुझे छुड़ाने को
न जाने किस हाल में होंगे, व्यथित दुखित मुझे पाने को
अब तक न खोज पाए तुम्हीं कहो,कैसे भेजूँ संदेश, मैं उनको ।

(306) स्नेही त्रिजटा ने समझाया, हताश रानी सीता को प्रेम से
थकी हारी बोली सीता, सो जाओ मुझे इस हाल में छोड़ के
देख सीता माता का यह हाल, हनुमान जी मन ही मन बोले
उधर स्वामी, इधर माते, दोनों को हैं समान विरह के फफोले ।

(307) फर्क इतना, माते सीता झेल रही सब , यहाँ अकेले-अकेले
प्रभु राम संग, हैं भाई लक्ष्मण और असंख्य वानर सेना के घेरे
चौंकी सीता पा आभास , आस-पास किसी के होने के संदेह में
बुदबुदायी,असंख्य सेना!आर्य तो निष्कासित हुए देश से वर्षों पहले ।

(308) कहीं कोई मायावी राक्षस तो नहीं, या देख रही मैं सपना
ऊपर डाली से बोले हनुमान, है यह सत्य, मैं हूँ आपका बच्चा
चौंकी सीता, नहीं कोई मेरा बच्चा, तब तक देखी प्रभु की मुद्रिका
मेरे प्रभु की ! किस राक्षस ने किया होगा अहित मेरे आर्य का ।

(309) कहाँ ? कैसे ? तुम्हें मिली मेरे आर्य की मुद्रिका, रो पड़ी सीता
उतरे हनुमान, लघु रूप कर, घुटनों बल से मानो हो छोटा बच्चा
बोले, माते ! मैं हूँ पवन पुत्र, दूत आपके आर्य प्रभु श्री राम का
असंख्य वानर-लंगूर रीछ, आतुर हैं वहाँ ,श्री राम की करने सेवा ।

प्रभु मुद्रिका माता सीता को देते हनुमान

(310) संयमित हुई सीता, रावण भी रूप बदल मुझे यहाँ ले आया
कैसे करूँ विश्वास तुम पर, चहूँ ओर है बिखरी छल की माया
बोले हनुमान, संदेह?साक्षात यमराज भी राम को नहीं मार सकता
मत कीजिए विलाप,उनके बल पर माते क्या आपको नहीं भरोसा ?

(311) पुनः बोले हनुमान, आपके विरह सिवाय सब सुख है वहाँ माता
तनिक भी चिन्ता न करें, कुशलपूर्वक हैं वहाँ, दोनों भ्राता
सौभाग्यवश आपको खोजने का श्रेय, मेरे खाते में आया
मेरे आर्य के दूत, है आशीर्वाद ,सदा मंगल हो तेरा, बोली सीता

(312) फिर हनुमान ने सुनायी सुग्रीव-मिलन, बाली वध की कथा
माते आपके फेंके आभूषण देख, बढ़ा था दुःख प्रभु का
सुग्रीव को बनाया राजा और की वहाँ धर्मराज की स्थापना
सब सुनाया हनुमान ने, राम की विरह वेदनीय व्यथा ।

अशोक वाटिका में माता सीता संग हनुमान

(313) हूँ अभिभूत बोली सीता, महीनों बाद प्रभु का समाचार पाकर
उद्वेलित हूँ सब सुन कर, मानो मेरे आर्य खड़े साक्षात यहाँ पर
देख उनकी दशा बोले हनुमान बैठिए माते, आप मेरी पीठ पर
अभी ही ले जाऊँगा आपको सीधे, मैं राम द्वार तक उड़कर ।

(314) आशान्वित बोले हनुमान, मत करो चिन्ता हे मात
आएंगे जल्द ही मेरे प्रभु आपको ले जाने अपने साथ
स्मृति चिह्न मुझे भी दे, कीजिए प्रभु राम को कृतार्थ
बोली माता चित्रकूट मंदाकिनी नदी की घटना कराना याद ।

(315) वो प्रेम व्यवहार, जो प्रभु ने दिखाया था मंदाकिनी तट में
है गुप्त रहस्य, जो जीवन्त है सिर्फ हम दोनों के ही बीच में
क्षुधा पीपसा की आज्ञा ले, किया प्रणाम माता को हनुमान ने
करूँ क्या सत्कार बोली माता, खा लो फल यहीं इस वन में ।

(316) फल फूल खाते, वृक्ष उजाड़ते उखाड़ फेंका समस्त वन हनुमान ने
हताहत राक्षस,इधर-उधर दौड़े, देख वीरता एक अतुलनीय वानर में
पूछा राक्षसियों ने, था वह कौन वार्तालाप किया, तुम संग जिसने
मासूम बन सीता बोली, होगा कोई कपटी मायावी, बन्दर वेश में ।

(317) बड़े-बड़े वीर राक्षस, मंत्री सारे पीछे दौड़े हनुमान के
सबको मार गिरा, मसली समस्त लंका अपने हाथों से
अक्षय कुमार, रावण पुत्र को भी मारा इसी हलाहल में
हताहत रावण बोले, इन्द्र तो नहीं कहीं बन्दर के रूप में ।

(318) हजारों प्रयास बाद, मेघनाद ने, ब्रह्मफांस में पकड़ा हनुमान को
प्रस्तुत किया उसे रावण समक्ष, जो उत्सुक था उसे देखने को
तू कौन जल्दी बता, हिसाब लूँगा हर खून का, बोले हनुमान को
मृत्यु भय छोड़, उत्पात मचा, उजाड़ रहा, जो मेरी ही नगरी को ।

(319) जिनके नाम से दिशाएं काँपती, वायु झाड़ू लगाती दिन रात
वरुण पानी देते, अग्नि देता प्रकाश, बोले मेघनाद
उन्हीं के समक्ष भयहीन खड़े, तुम कर रहे निर्भीक बात
हे दु:साहसी मूर्ख वानर, परिचय दो इन्हें, ये हमारे नाथ ।

(320) मैं दूत हूँ , अतुलित बलशाली, अवध कुमार श्री राम का
जिनकी पत्नी चोरी से ला, परिचय दिया तुमने कायरपन का
उसी सीता माता की खबर लेने आया, मैं पवन पुत्र हनुमान
ब्रह्मफांस में बंधा यहाँ, नहीं कर सकता ब्रह्मा का अपमान ।

(321) अति क्रोधित हुए रावण, दी आज्ञा मेघनाद को प्राणदंड देने की
बोले विभीषण ,अशोभनीय है, नहीं यह परंपरा नीति कहीं की
चाहे कर लो किसी दूत की अवहेलना अथवा अंग-भंग भी
नहीं ले सकते प्राण किसी भी राजवंश में, है यह अयोग्य भी ।

रावण - हनुमान संवाद (पूंछ जलाने से पहले)

(322) दी आज्ञा रावण ने मेघनाद को, ठीक है गर सही यह बात
बंदरों की होती है प्रिय पूँछ, लगा दो इसमें आग
जलेगी इसकी पूँछ, सारी लंका इसे देखेगी आज
पता चले दुश्मनों को, रावण की दुश्मनी का परिणाम ।

(323) मंगाया गया तेल-बाती करने , दुर्गति एक दूत की
लगायी पूँछ में आग, देखे सब उसकी बेबसी
किंतु हनुमान थे अति बुद्धिमान,और दुर्गति करी लंका की
जला डाली स्वर्णिम लंका, बलिहारी थी वानर पूँछ की ।

(324) हाहाकार मध्य हनुमान पहुँचे सीता के पास अशोक वन में
माता बोली , वाह ! जला डाला तुमने लंकेश का दर्प पल में
बोले हनुमान अग्नि देवता हैं चाचा मेरे, जिसने दी शीतलता मुझमें
है ये श्रेय आपके आशीर्वाद का, जिसने दी इतनी चतुराई मुझ में ।

हनुमान द्वारा लंका दहन

(325) नगर को जलाना, सम्पति नष्ट करना,इन सबमें है एक ही राज
प्रभु की शक्ति दिखा,अहंकार रावण का मिटाना वगैर मोलभाव
मानता रावण खुद को सर्वोपरि,जाए समुद्र को जोड़े हाथ-पाँव
और बुझाए समस्त आग,जो फैली सम्पूर्ण लंका में आज ।

(326) बोली वैदेही, किंतु पुत्र लंका की प्रजा को क्यूं सजा
बोले पवन पुत्र, दुष्ट हैं सारे, यथा राजा तथा प्रजा
पुनः कर प्रणाम माता को, ली वापस जाने की आज्ञा
दिया आश्वासन, समुद्र पार कर, प्रभु ले जाएंगे छुड़ा ।

(327) देखते ही देखते हुए वापस, वायु पुत्र आकाश मार्ग से
फूले न समाए जामवंत-अंगद, अन्य वीर ,उन्हें देख के
सारा वृतान्त सुन बोले अंगद, हमही कर दे अंत वहाँ जा के
होंगें प्रसन्न प्रभु एवं सुग्रीव हमारे संग सीता जी को देख के ।

(328) बोले हनुमान मत आंको कम,रावण एवं उसकी सेना को
राजी न होगी माता, प्रभु बिना हमारे संग आने को
सौंपा था प्रभु ने हमें माता की खोज करने को
चलें वापस पहले, सबको यह शुभ संदेश देने को ।

(329) पहुँचे सभी, श्री राम, लक्ष्मण, सुग्रीव के पास, सुनाने कथा
बोल प्रभु राम, ऋणी रहूँगा हनुमान, मैं तुम्हारा सर्वदा
क्या दूँ तुम्हें, सदा चाहूँगा यश तुम्हारा, तुम्हारी अमरता
किंतु क्षुब्ध हूँ, विचारकर प्रिय जनक नन्दिनी की पीड़ा ।

(330) माता सीता की चूड़ामणि, प्रभु को सौंपी वीर हनुमान ने
बोले उनके प्राण अटके, प्रभु दर्शन को नैन हैं तरसे
कहा किस अपराध के कारण त्यागा उन्हें प्रभु ने
अब है एक आस, निकले प्राण, प्रभु को साक्षात पा के ।

(331) सुनते ही आवेश में बोले लक्ष्मण, मार डालूँगा धूल में चटाके,सब को
मां समान भाभी की दुर्दशा, ब्रह्मास्त्र से हनुमान को, बांधने वाले को
संयमी राम की विनयता, मानता हूँ मैं रावण के हर अपराध को
किंतु सीता संग अभद्रता न कर, दर्शाया अपने विद्वत् आचरण को ।

(332) चाहता तो एक मास में दिखा सकता था ,वो अपनी राक्षसी प्रकृति
बिफरे लक्ष्मण , अभी भी दुहाई देते आप उस दुष्ट रावण की
बोले राम , यह मेरे दिल को है आश्वासन, नहीं दुहाई किसी की
हूँ मैं भी आहत, पाकर हनुमान से मार्मिक संदेश अपने प्रिय की ।

(333) आगाह किया सुग्रीव को, हमें बनानी होगी बड़ी रणनीति
समुद्र पार कर, सभी को वहाँ पहुँचने की कौशल रीति
जल्दबाजी, आवेश से बच, बुद्धि से संयम की युक्ति
सीता को ससम्मान ला, पूर्णतः समाप्त करेंगे राक्षसी वृत्ति ।

(334) हुई प्रस्थान विशाल सुग्रीव वानर सेना, बजे रणभेरी नगाड़े
कंधों पर हनुमान के सुग्रीव, अंगद पर थे लक्ष्मण विराजे
मध्य में प्रभु थे सुरक्षित, सेनापति ऋषभ थे सबसे आगे
ऋक्षराज, जामवंत, सुषेण थे पीछे सेना पर दृष्टि डाले ।

(335) अंगद, जामवंत के बताए पथ से पहुँचे समुद्री तट पर सारे
जहाँ देखो जल ही जल, अपार समुद्र, जहाँ तक दृष्टि डाले
था जटिल प्रश्न इसे पार करने का, किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे सारे
होता आकाशचरी रथ भी, असंख्य सेना कैसे पार करते सारे ।

(336) दृष्टि थी सबकी बुजुर्ग अनुभवों के सागर,विवेक के धनी,जामवंत से
सौमित्र चिंतित , कैसे उबर सकते हम इस जटिल समस्या से
दिया सुझाव जामवंत ने है समाधान, करें प्रार्थना हम दयालु समुद्र से
सहमत राम, प्रार्थना से पिघले पत्थर,तो है ये सागर,भरा सुख-दुःख से ।

(337) हो गए तीन दिन प्रभु राम को, निर्जल, समुद्र से प्रार्थना करते
क्रोधित लक्ष्मण, सामनीति से नहीं, मानेंगे वे दंडनीति से
कुटिल से प्रीति, त्याग की आशा होती नहीं कभी लोभी से
और फेंका अग्निवाण , जलने लगा समुद्र देखते ही देखते ।

(338) निर्दोष जीवों पर करनी चाहिए दया, कहा दशरथनंदन श्री राम ने
बोले लक्ष्मण,अच्छे कामों के लिए कभी बुरे निर्णय भी लेने पड़ते
इतने में आए वरुण देव, हाथ जोड़ प्रभु से माफी मांगते
हे अवधेश, पहचान नहीं पाया आपको, क्षमा कर दें मुझे ।

(339) प्रत्युतर में राम, पंचतत्त्व है जड़, जानकर भी की तुम्हारी आराधना
दोषी खुद को मान, किया वरुण देव ने आग्रह वाण निकालने का
वापस लिया लक्ष्मण ने वाण, कहा समुद्र से चाहते इसे सुखाना
ताकि बना सकें पथ, संपूर्ण सेना संग हमें पार कर लंका है जाना ।

राम नाम की शक्ति - पुल निर्माण कार्य

(340) तीर से समुद्र जल सोख बनाएंगे, हम पथ वहाँ जाने का
बोले समुद्र, पर इसमें है समस्या, मेरी प्रतिष्ठा खोने का
आप की सेना के महत्त्वपूर्ण अंग, नल, नील हैं वास्तुकार
बनी रहेगी मेरी प्रतिष्ठा, जो वे बनाएं पुल लेकर नाम आपका ।

(341) पुल निर्माण हेतु , आपके नाम के, डाले वे हर पत्थर
कर दूंगा मैं स्थिर उन्हें , अपनी ऊपरी सतह पर
रहूँगा मैं सहायक हर तरह से, हर मुश्किल घड़ी पर
कीजिए मुझपर विश्वास, संयम होगा मेरा, हर लहर पर ।

(342) मान ली प्रभु ने, वरुण देव की ये अत्यन्त ठोस बात
नल-नील ने, पुल रचना की तुरन्त करी शुरुआत
बोले प्रभु, शिव मन्दिर-स्थापना कर, करेंगे फिर प्रयाण
हूँ शिव भक्त, ले उनका आशीर्वाद करूँगा मैं प्रस्थान ।

लंका प्रस्थान से पूर्व - शिवलिंग स्थापना

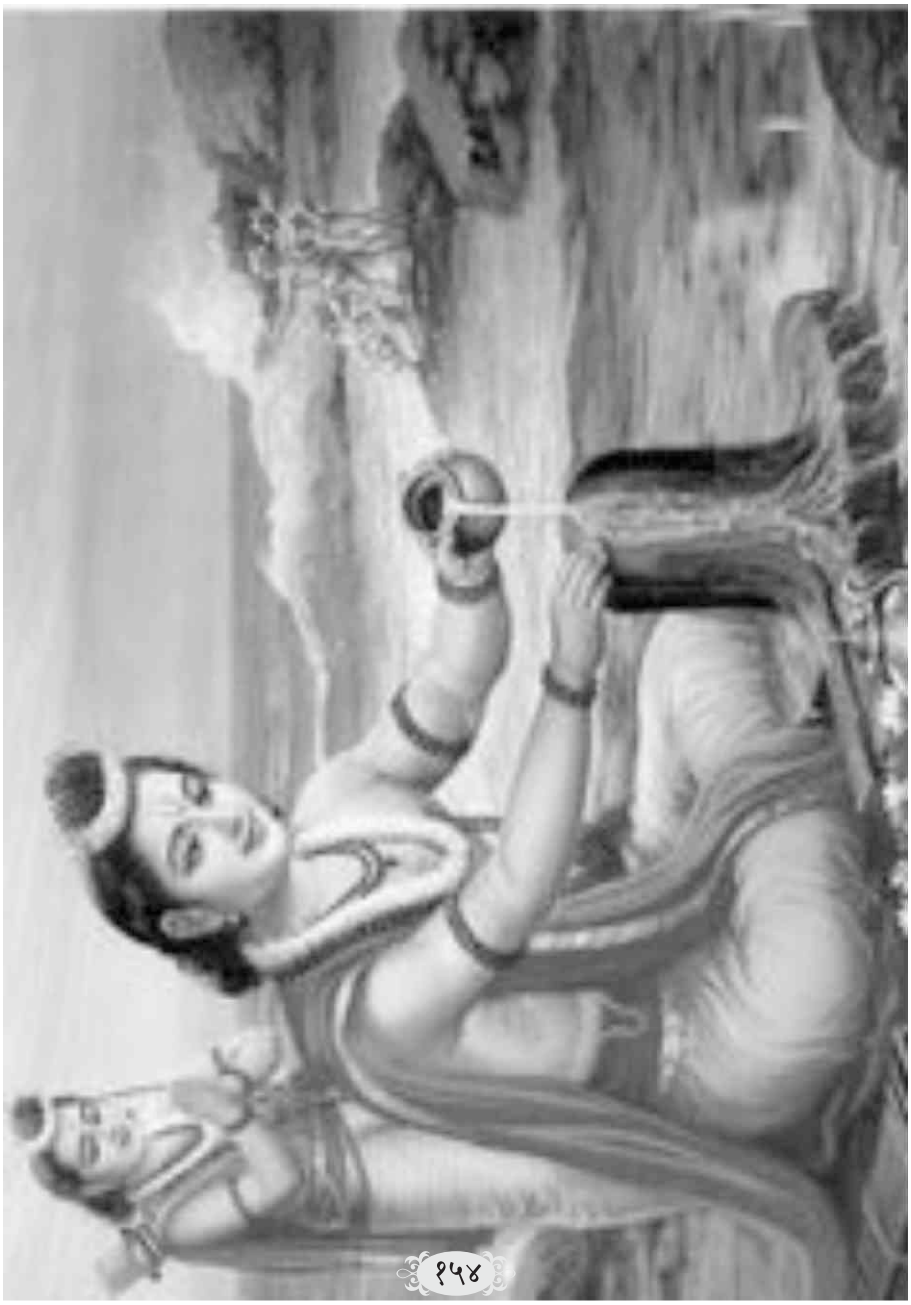

(343) शिवलिंग स्थापना हेतु, भेजा सुग्रीव ने कैलास, हनुमान को
नल-नील ने चुनौती स्वीकार, संभव कर दिया असंभव को
ज्यों दूध में हो, मलाई की परत, चिपका पुल समुद्र में यों
मंदिर निर्माण, शिवलिंग स्थापना का प्रारंभ हुआ यों ।

(344) देखते-देखते पलक झपकते , पुल निर्माण सम्पूर्ण हुआ
गदगद श्री राम देख नल - नील की वास्तुकला
तुम दोनों का ज्ञान रहेगा सदा , जब तक है यह धरा
शिवलिंग की कर स्थापना, पूर्ण की श्री राम ने,पूजा अर्चना ।

(345) विशेष सभा का आयोजन किया, इधर राक्षस रावण ने
सचेत किया सबको, हनुमान के पराक्रम से,माल्यवान ने
सुन न पाए रावण हनुमान का शौर्य ,अपनी भरी सभा में
निकाला, रावण के नाना के मंत्री माल्यवान को,अपमान से ।

(346) रावण थे अनभिज्ञ, पुल निर्माण के असंभव कार्य से
सचेत किया अन्य मंत्रियों ने ,उन्हें पुल निर्माण पूर्णता से
विभीषण ने दिया साथ माल्यवान का,एक न सुनी रावण ने
अनैतिक है परायी स्त्री चुराना, साथ देते कहा कुंभकर्ण ने ।

(347) विनाशकारी है हमेशा, काम-क्रोध-लोभ की लालसा
किया भाई विभीषण का स्पष्टीकरण, लौटा दीजिए सीता
राक्षस होते हुए भी उन्हें आभास था मान अपमान का
श्री राम दूत हनुमान के शौर्य, रावण की अनीति का ।

(348) बोले रावण यह चुनौती है, खर दूषण को मारने की
शूपर्णखा का अपमान, राक्षस कुल को ललकारने की
विभीषण से बोले , तुम बने रहो अकेले यूं ही पुजारी
उस राम में हिम्मत नहीं अपनी पत्नी छुड़ाने की ।

(349) न दूँगा मैं साथ इस पाप की लड़ाई में, बोले कुंभकर्ण भाई को
पर-स्त्री हरण है अनुचित, देता नहीं शोभा किसी भी राजा को
छः महीने बाद उठे कुंभकर्ण ने , समझाना चाहा भाई रावण को
मांस-मदिरा भोजन उन्हें दे चुप कराया , रावण ने कुंभकर्ण को ।

(350) विनाशकाले विपरीत बुद्धि, थक हार कर कहा विभीषण ने
लात मार निष्काषित करना चाहा, विभीषण को क्रोधित रावण ने
है यह दुश्मन, नहीं मेरा भाई, धक्के मार निकालो, दहाड़े सभा में
बोले विभीषण , मत फिंकवाओ मुझे, मैं खुद ही जा रहा यहाँ से ।

(351) धर्म के हितकारी विभीषण, पहुँचे सीधे राम की शरण में
प्रभु से मिलने को रोकना चाहा, सुग्रीव, अंगद दूजे रक्षकों ने
फिर आश्वासित हो हनुमान से, मिलने दिया उन्हें प्रभु राम से
शरणागत दुश्मन विभीषण से मिले ,प्रभु श्री राम प्रेम सम्मान से ।

विभीषण राम की शरण में

(352) गले मिल दिया आश्वासन प्रभु ने, विभीषण को
चकित रह गए विभीषण , देख राम के चरित्र को
जितना जाना उससे कहीं ज्यादा समझा प्रभु आपको
दुःख है , समझा न पाया मैं अपने ही बड़े भाई को ।

(353) हुआ मैं धन्य पाकर प्रभु आपके चरण, छत्रछाया और सतसंग
बोले राम भाग्यशाली हूँ पाकर, आप जैसे धर्मशील भाइयों की संग
अन्याय से लड़ना,परमार्थ के लिए जीना है, हमारा मकसद हरदम
हो चाहे बाबा जामवंत,हनुमान, नल-नील, सुग्रीव या वीर अंगद ।

(354) इधर कोलाहल मचा लंका में, पुल बंधाया समुद्र में
बोले मंत्री आये दो बालक, लिए वानर सेना समुद्र तट में
डेरा पड़ा है उनका, असंख्य वानर वीर रीछ हैं जिसमें
आगे हनुमान,पीछे जामवंत,दाएं अंगद,बाएं सुग्रीव-विभीषण सुरक्षा में

(355) लगा कोसने रावण समुद्र को,भला था अगस्त्य ने, इसे था सुखाया
धिक्कार है इसे अपने अस्तित्व पर, पुल बांध-पोखर रूप अपनाया
डलवाया हर कुएँ, तालाब में विष, न मिले भोजन वैसी की व्यवस्था
फिर बोले, अगर वानर सेना घुसी नगर में,भून डालूँगा मैं उन्हें कच्चा ।

(356) मंत्री-महामंत्री को आदेश देते, पहुँचे रावण अंत:पुर में
बुद्धिमति-रूपवती पत्नी मन्दोदरी, थी जहाँ अधीर इन्तजार में
पलक झपकते बैठाया स्नेह प्रेम से, आते देख पति को क्रोध में
बोली, जीता आपने देवता, किन्नर-गंधर्व, राक्षसों को लड़ाई में ।

(357) किन्तु महाराज! वानर,मानव कमजोर जान किया नजरअंदाज आपने
उनसे जीतने का वर न मांगा, न ही कोई वरदान आपके पास में
संपूर्ण लंका दाव पर लगा दी, सिर्फ सीता के लिए महाराज आपने
बचाइए लंका, लौटा दीजिए सीता, मत खोइए होश, आवेश में ।

(358) माना रावण ने इसे, मंदोदरी का स्त्री डाह और की अवहेलना
बोले इन्द्र, वरुण, अग्नि, कुबेर, दिगपाल नहीं कर सके मेरा सामना
फिर भला मगध से आए इन तपस्वी छोकरों से, काहे का डरना
आश्वस्त न थी मंदोदरी, कहा फिर भी मुश्किल है इन्हें जीतना ।

(359) हंसकर प्रेम से बोले रावण, मेरी शक्ति पर क्यूं संदेह तुम करती
भले हो सीता मेरे पास, तुम ही रहोगी पटरानी मेरी सदा की
है यह मेरा वचन, मेरी प्रिय मंदोदरी , महारानी तुम लंका की
जल्द ही स्वर्णिम लंका में देखना, गूँजेगी ध्वनि विजय की ।

(360) मुस्कुराते रावण ने , सम्पूर्ण जानकारी मांगी पुत्र प्रहस्त से
हुए आश्चर्य चकित , जान बांधा गया पुल समुद्र पे
भेजा तुरन्त शक-सारण को ,रणनीति दुशमनों की, पता करने
अस्त्र-शस्त्र, राम की गतिविधि, सम्पूर्ण रूप से जानने ।

(361) निरीक्षण करते पकड़े गए दोनों, विभीषण की पारखी नजर से
मार डालने की आज्ञा देनी चाही उन्हें, महाराज सुग्रीव ने
किंतु संयमी श्री राम बोले, सहमे हुए दोनों गुप्तचरों से
छिप कर क्यों ! देखो हमारे शस्त्र, व्यूह रचना दोनों खुल के ।

(362) आश्चर्यचकित थे सारे , देख प्रभु के संयमी विवेकी रंग
आज्ञा दी हनुमान को शस्त्र दिखाने की लेकर उन्हें संग
कहा प्रभु ने अस्त्र-शस्त्र से ज्यादा जरूरी होता नैतिक बल
माप नहीं सकते, वो आंतरिक ऊर्जा जो मिलती है कर सत्कर्म ।

(363) रची गयी सभा, राम लक्ष्मण संग अंगद विभीषण हनुमान सभी की
बोले प्रभु नहीं चाहता अभी भी युद्ध, आहूति हो जिसमे मासूमों की
हमारे बल शक्ति का परीक्षण अब कर लिया है,रावण ने भी
सिर्फ सीता की खातिर युद्ध कर नहीं बनना चाहता महत्त्वाकांक्षी ।

(364) नहीं चाहता सीता की खातिर, हजारों पत्नियों को, विधवा बनाना
छूटे, बूढ़े माँ-बाप का सहारा, बलिदान मासूम सैनिकों का करना
जानता हूँ आए यहाँ,युद्ध की खातिर, फिर भी दिल नहीं मानता
शायद मान जाए रावण,हमारी शक्ति देख उसे होए कोई आशंका ।

(365) आखिर में बोले सीतापति राम, वयोवृद्ध वीर जामवंत को देखकर
आप ही सुलझाएँ यह द्वन्द्व , अपने अनुभवों के आधार पर
बोले जामवंत, था रावण कभी मित्र बाली का, प्रेम भी था उस पर
वीर-तर्कशील-बाली पुत्र समझाएँ, युद्ध टालने की युक्ति वहाँ जाकर ।

(366) सलाह जामवंत की मानी श्री राम ने, बुलाया युवराज अंगद को
बोले अंगद, आया आप सबके काम, कृतार्थ मेरे सौभाग्य को
जाऊँगा जरूर शांति दूत बन फिर से उसे भरसक समझाने को
असली रूप दिखाने से नहीं चूकूँगा, जो मेरी बात न मानी तो ।

(367) जरूर दिखाना रूप बोले राम, किन्तु होगा जो युद्ध तब ही
यूँ विदा हुए अंगद, पहुँचे रावण के दरबार, चकित सभी ही
पूछने पर बताया अंगद ने, हूँ राम दूत मित्र भाव से आया अभी
हंसा रावण, अरे बन्दर हमारा वैभव बल देख डर गए तुम सभी ।

(368) अंगद बोले जानता हूँ, आप हैं पुलस्त ऋषि के नाती, शिव भक्त
पा कर उनसे वरदान,जीता इन्द्र देवता को, पर बन न सके रक्षक
सब कुछ जीत कर भी घटाया यश, सीता जी को हर कर
राजनीति-धर्मनीति को दिया धब्बा, परायी नार चुरा कर ।

(369) उत्तेजित बन बोले रावण,बालक समझ अब तक सहन कर रहा
मित्र पुत्र मान, अवहेलना कर सभा से बाहर नहीं निकाल रहा
मूर्ख जानता नहीं मेरी शक्ति, अपरिपक्व बुद्धि से इठला रहा
न देखा किष्किन्धा राज्य से बड़ा, न वीर कोई सुग्रीव से बड़ा ।

(370) जानूँ आपकी शक्ति,नीति, राक्षसी वृत्ति, फिर भी रखता प्रस्ताव
युद्ध कर मिलेगा क्या, होगी ध्वस्त लंका, होगा सबका विनाश
मरेगी मासूम प्रजा, सधवा बनेगी विधवा, बच्चे होंगे अनाथ
करना नहीं चाहता, अपमान, पर सोचिए जरा युद्ध का अंजाम !

(371) बौखलाया रावण क्रोध से भभका, बोला आग उगलते
मुकाबला नहीं कर सकते कोई, तो ले आया प्रस्ताव डर से
वो छोकरा राम,डूबा पत्नी विरह में,लक्ष्मण भाई के दु:ख से
कायर विभीषण युद्ध क्या जाने, वृद्ध जामवंत उम्र से हारे ।

(372) बाली के डर से जो बीबी छोड़ भागा, वो सुग्रीव है अभागा
मेरी शक्ति समक्ष वो भगोड़ा भला, कहाँ टिके जो था भागा
अब बचा सिर्फ हनुमान, जिसने जलायी मेरी लंका
है वो वीर अवश्य,पर मेरी शक्ति का नहीं कर सकता सामना ।

(373) वाह क्या बात है बोला अंगद, करता दुश्मन का गुणगान
अपने पुत्र अक्षय की हत्या करने वाले को, दे रहा अभय दान
बड़ी खूबसूरती से पचा रहे, अपनी लज्जा, शर्म और अपमान
सुनकर रावण यूं गरजे, मानो भूखा शेर गरजे देख जंगल वीरान ।

(374) सह रहा यह सब ,अपने मित्र का बेटा, मेरे मेघनाद जैसा मान
तुम मन्दबुद्धि, बाप का भक्षक, जा के थामा दुश्मनों का हाथ
मस्तक भेंट करने वाले की शक्ति की समझ का नहीं औकात
दुश्मन से संधि की बात करने वाले का,दे रहे तुम कायर साथ ।

(375) पिता का मित्र समझ, बोला अंगद मैं ने भी तुम्हें सुना
वरन् धरती पर पटक, मैं यूं ही तुम्हें मसल देता यहाँ
किंतु मेरे प्रभु राम की आज्ञा से, मैं अभी यहाँ हूँ बंधा
मेरा रक्त वही, छः महीने जिसने तुम्हें कांख में था बांधा ।

(376) उसका पक्ष, चिल्लाया रावण, जिसने तेरी मां को विधवा बनाया
तुम्हें गद्दी न दे कर, धोखेबाज सुग्रीव को महाराजा बनाया
वो राम! जिसके बाप ने , पत्नी संग उसे महल से धकेला
वही कायर, सिंहासन के लिए लड़ना छोड़ वन को दौड़ा आया ।

(377) अब तो अंगद ने गुस्से से पटके पाँव, मानो भूकम्प आया
गिरने लगा रावण का मुकुट, खुद को भूमि पर गिरा पाया
दौड़े राक्षस, मेघनाद किंतु अंगद का पैर कोई हिला न पाया
देख उठा रावण, मैं ही उठाता पैर, सोच वो जमीन पर झुका ।

(378) बोला अंगद, दूत के पांव ! पकड़ना है तो, पकड़ सीता के
और दहाड़ा रावण, नहीं पकडूँगा, जीतूँगा उसे मैं लड़के
बोल दो अपने राम को, नहीं मिलेगी सीता बिना युद्ध के
अंगद बोला,अहंकारी को कुछ नहीं दिखता सिवाय अहंकार के ।

युवराज अंगद - रावण की सभा में

(379) पहुँचे रावण बड़बड़ाते अपने महल, रानी मंदोदरी के पास
आए हर दिन एक बन्दर, मानो जगह हो यह घूमने की खास
हैं ये दूत राम के, नहीं तो टिकने न देता इन्हें आस-पास
विवेकी मन्दोदरी, स्वामी मान जाइए अभी भी आप इनकी बात ।

(380) पहले दूत ने अक्षय को मार,वाटिका उजाड़,जलायी लंका पल में
दूजे ने आव न देखा ताव, आपकी प्रतिष्ठा मिटायी धूल में
नाथ मेरे प्राण क्यूं नहीं समझते,भरी है वीरता इनके रग रग में
नहीं ये सामान्य तपस्वी,जिनकी रेखा भी पार न कर पाए वन में ।

(381) नहीं है समाधान युद्ध, किसी भी बड़ी समस्या का
विनाशकारी होगा ये राष्ट्र, देश और आनेवाली पीढ़ियों का
मानती हूँ इन्द्र को हरा,अभिवृद्धि होती हुई आपकी प्रतिष्ठा
किंतु यह युद्ध बनकर दाग, रचेगा इतिहास विनाश का ।

(382) मैं ही जाती हूँ सीता को उन्हें लौटाने, कम न होगा आपका मान
तपस्वी कुमार खुद नहीं चाहते युद्ध, भेजे शांति दूत कितने महान
इतनी अक्ल मुझमें भी है जो दूत पार कर सकते समुद्र विशाल
वो सेना भला कैसे हो सकती साधारण, मानिए अब भी मेरे प्राण ।

(383) अट्टहास करते बोला रावण,प्रिये तुम भूल रही, हो तुम मेरी पत्नी
अजेय, अमर, अद्वितीय, बलशाली लंकेश की अर्धांगिनी
मेरे ही देश में घुस वो तपस्वी,बार-बार आक्रमण की देता चुनौती
ताड़का, मारीच, खर, दूषण को मार, चाहता अब वो शांति !

(384) विभीषण से बोले राम, कर दी घोषणा युद्ध की रावण ने
हम युद्ध करेंगे, घुसकर प्रातः उसके ही नगर में
लेकर विभीषण से जानकारी, तैनात हुए नायक चारों दिशाओं में
बजा युद्ध का बिगुल, शक्ति का संचार हुआ वानरों में ।

(385) हुआ कोलाहल! राम, लक्ष्मण, सुग्रीव के जयजयकार से
इधर -उधर बंटे वानर, आ पहुँचा मेघनाद मुख्य द्वार से
हुई हाथापाई उसकी, वीर अंगद एवं बलशाली हनुमान से
हुए बेहोश मेघनाद, हनुमान की लात छाती पर पड़ने से ।

(386) हुए विस्मित रावण, देख पुत्र मेघनाद की दुर्दशा
बोले एक बन्दर से भी , न कर सके अपनी सुरक्षा
था प्रहार भयंकर, बोले मेघनाद, इन्द्र के प्रहार से ज्यादा
हुआ यह सब कुछ कैसे, मुझे कुछ न याद आता ।

(387) अब न हो लड़ाई सामूहिक, होगी सेनापतित्व की नीति से
तुम हो मेरे वीर लायक पुत्र, करो कल से युद्ध सेनापति बन के
और मचाया कोहराम, सचमुच मेघनाद ने, तूफानी बन के
देख विकराल स्थिति दौड़े लक्ष्मण राम से अनुमति ले के ।

(388) बोले राम, स्थिति है नाजुक , रहना सतर्क तुम युद्ध में
वीर लक्ष्मण का जवाब, बचेगा नहीं कोई मेरे वाणों से
सच में मचा कोहराम, घबड़ाए मेघनाद लक्ष्मण के क्रोध से
निष्फल होते वाण, छोड़ा मेघनाद ने, वीरघातिनी शस्त्र, जवाब में ।

(389) गिर पड़े लक्ष्मण धरती पर हो अचेत, सीने से बही खून की धारा
भ्राता की हालत देख प्रभु रो पड़े, हाय!यह मैं ने क्या कर डाला
तुम्हें खोकर क्या करूँगा,पा कर भी मैं अपनी व्याहता पत्नी सीता
कहाँ पाऊँगा तेरे सा विश्वासी भाई,शायद मिल जाती सीता दोबारा ।

(390) बोले विभीषण रखिए धीरज प्रभु , न बनिए ऐसे बेहाल
धीरज ? क्या कहूंगा छोटी माँ को ,रखा न उसका पुत्र संभाल
और बेचारी उर्मिला ! विरह में गुजार रही जो सालो साल
फिर न जी पाऊँगा मैं भी, उठो लक्ष्मण सुन लो मेरी गुहार ।

(391) मेरा विश्वास, मेरा साहस, मेरा प्रतिबिम्ब हो ,तुम मेरे भाई
जो न उठे तुम,दूंगा मैं अपने प्राण यहीं, तुम संग मेरे भाई
जैसे तुम थे हर घड़ी मेरे साथ,जाऊँगा यमलोक मैं भी भाई
यूँ मुझसे आँख मिचौली मत कर,उठ जा मेरे प्राण मेरे भाई ।

(392) बेचैन सुग्रीव ,सारी सेना,जीवन देकर भी हम बचाएँगे भैया को
युक्ति दी विभीषण ने , वैद्य लंका से लाने की, हनुमान को
ले कर पता उड़े हनुमान, बना साथी हवा के झोंकों को
देखते ही देखते, अपनी पीठ में बैठा ले आए वैद्य को ।

(393) मत घबड़ाइए प्रभु इतना, निरीक्षण कर बोले वैद्य, प्रभु से
है एक जड़ी बूटी संजीवनी, मिल सकता पुनः जीवन जिससे
किन्तु है कठिनाई, मिलती यह सिर्फ द्रोणगिरि पर्वत में
बच सकते ये, अगर आज ही घिस कर पिलाए हम इसे ।

हनुमान-संजीवनी जड़ीबूटी के पहाड़ के साथ

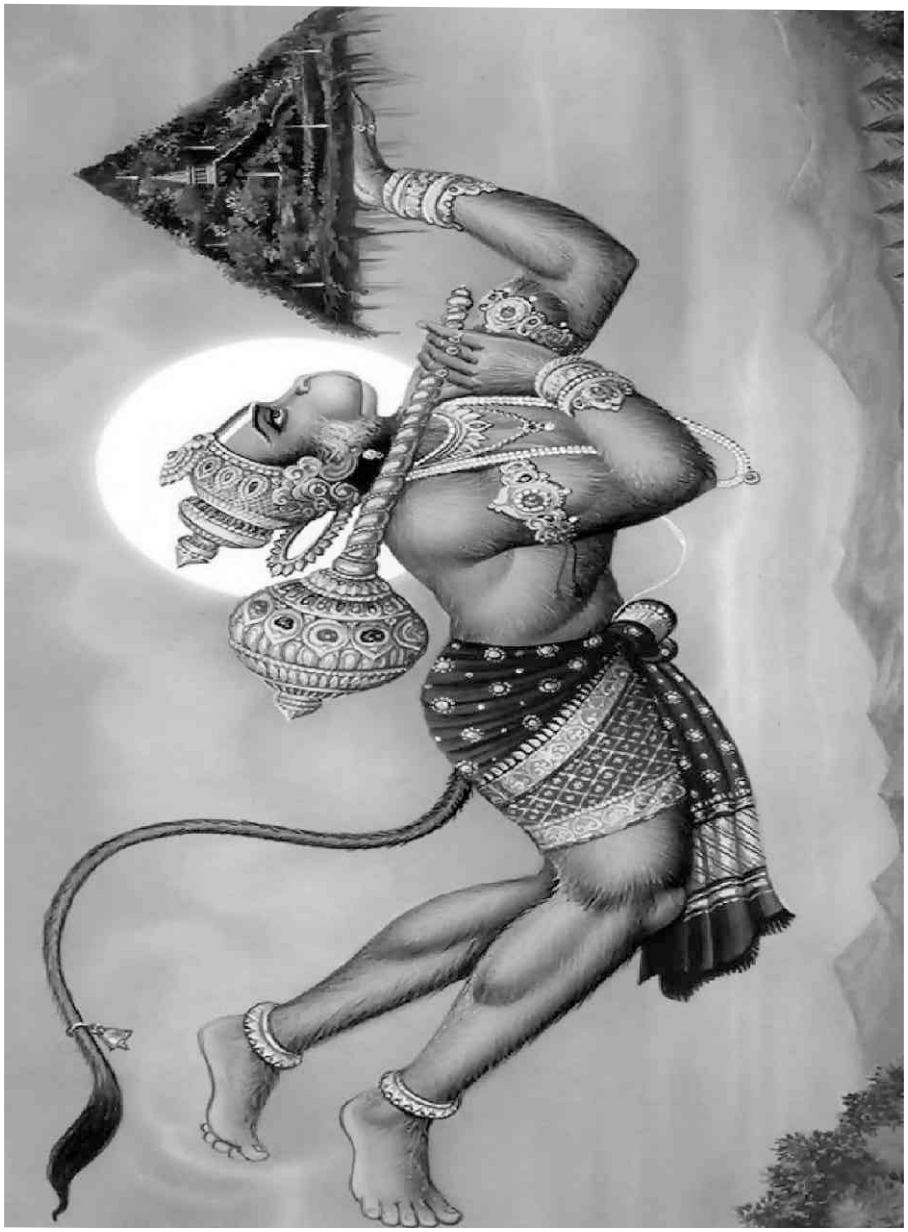

(394) उस पौधे के रस का सेवन, दे सकता इन्हें नव प्राण
चमकते दीये सा होगा वह, कहलाता है शक्तिवाण
मैं जा रहा हूँ प्रभु दीजिए आशीर्वाद, बोले हनुमान
असीमित गति से पलक झपकते पहुंच, बचाऊँगा प्राण ।

(395) तुम पर हूँ आश्रित बोले प्रभु ,दीन-हीन खुद को मान
लक्ष्मण नहीं सिर्फ भाई मेरा, है वह मेरे पिता समान
सीता को पाने में भाई को खोना ! मेरे अटके रहेंगे प्राण
ऐसी निर्लज्जता का सामना कैसे करूँगा, बोलो हनुमान ।

(396) लेकर राम नाम ,वगैर समय गंवाए, उड़े हनुमान अपनी मंजिल पर
करने लगे विलाप राम, निर्जीव शरीर अनुज लक्ष्मण का देख कर
ढाढ़स दिया विभीषण ने, न होवें हताश, विश्वास रखिए हनुमान पर
पौ फटने के पहले जरूर पहुँचेंगे हनुमान, जड़ी-बूटी वहाँ से लाकर ।

(397) इतने में बोले अंगद, दूर पहाड़ पर दिख रहा कुछ रेंगता
लगे संपूर्ण पहाड़ उठा लाए हनुमान, जिससे वो चमकता
सचमुच हनुमान उतरे पर्वत संग, सम्पूर्ण वातावरण हर्ष से गूंजा
किया उपचार वैद्य ने, उठे लक्ष्मण बोलते क्यों सबने है घेरा ?

(398) हर्ष के आँसू बहाते श्री राम बोले, तुम नहीं मेरे प्राण हैं जगे
मूर्छित थे मेघनाद के वाणों से, इसलिए खड़े हम तुम्हें घेरे
गद्‌गद् बन आभार प्रकट किया वैद्य राज का, श्री राम ने
सचेत लक्ष्मण तुरन्त बोले, छोड़ूंगा नहीं मेघनाद मैं अब तुम्हें ।

(399) ज्यों सुनी रावण ने राम के खेमे में गूँजती खुशहाली
तड़प कर बोले आज मेरे पुत्र की युद्ध में नहीं होगी पारी
महामंत्री व्रजकष्ट के सेनापतित्व में युद्ध की करो तैयारी
पता चला मरा वो अंगद के हाथों,अब नेतृत्व में किसकी बारी ?

(400) जाएगा, आज मेरा पुत्र प्रहस्त युद्ध में रावण बोले
महाराज, उसे नील ने मारा, कल ही उसने प्राण त्यागे
विचलित हुए रावण, किस आफत के पर हैं ये वानर सारे
कल से करूँगा मैं युद्ध, आज कुंभकर्ण को करो आगे ।

(401) शहनाई, नगाड़े, तुरही, रणसिंहा से भी कुंभकर्ण नहीं जागे
हाथी से हाथ-पाँव हिला,डाली नाक में रस्सी, तब कहीं वे जागे
उठते ही गुस्से में बोले,किस पागल ने की हिम्मत,आए वो आगे
बोले रावण, वो पागल हूँ मैं, शुक्र तुम कठिन प्रयास से जागे ।

(402) लंका है बेहाल, खर, दूषण, त्रिशिरा, दुमेख धूम्राक्ष को मार
दो तपस्वी बालकों ने मेरे पुत्र प्रहस्त को मार किया ये हाल
अक्षय, अतिकाय, अकम्पन, कालनेमि का भी किया संहार
अब आपको जगाए बिना, कैसे हो लंका और मेरा उद्धार ।

कुंभकरण को जगाना

(403) बोले कुंभकर्ण, गलत था सीता का हरण, तब ही कहा था
किन्तु शूर्पणखा की बातों में, तुमने कब मेरा कहा माना था
थी वो विष की बेल, और तुमने ले लिया वैर श्रीराम का
न चाहते हुए भी , रिश्ता निभाऊँगा मैं, अपने बड़े भाई का ।

(404) आते ही कुंभकर्ण ने युद्धभूमि में मचाया बेशुमार कोहराम
हनुमान,अंगद, सुग्रीव, जामवंत,नल-नील का किया हाल बेहाल
अंगद-सुग्रीव कोख में दबोचे, धरती पर पटकाए हनुमान
सुनाया विभीषण ने, श्री राम को ये सारा आँखों देखा हाल ।

(405) कहा श्री राम ने बचाओ तुम बाकी सेना, मैं जा रहा उससे लड़ने
सुना है तुम हो बड़ा पराक्रमी, कहा कुंभकर्ण से श्री राम ने
बाएँ हाथ का मेरा खेल तुमसे लड़ना, बोले कुंभकर्ण राम से
मत बनो अनाड़ी चुकानी होगी कीमत, इस खेल की कहा राम ने ।

कुंभकरण वध

(406) बोले राम, भेजता हूँ तुम्हारा सर, अभी रावण को, तुम्हारे सामने
प्रत्युत्तर कुंभकर्ण का, धड़ फिर भी लड़ेगा, इतनी ताकत मुझ में
लड़ने लगा धड़ आश्चर्य ! सर काटने के बाद भी सच में
किए टुकड़े-टुकड़े राम ने , जब तक प्राण न त्यागे कुंभकर्ण ने ।

(407) हुए विचलित, आश्चर्यचकित रावण देख मृत्यु, वीर छोटे भाई की
शोकमग्न उनकी रानियाँ, नहीं बिगाड़ा था उन्होंने किसी का कभी
बोली रानियाँ, सोते थे, जागते थे, मानते थे सारी बात आपकी ही
वीर वो ,मरा नहीं, हुआ शहीद,लूंगा बदला, समझाया रावण ने भी ।

(408) इतने में आया मेघनाद बोले, अब मैं खात्मा करूँगा सब का
आशीर्वाद दिया रावण ने ,अब है सिर्फ तुम पर ही मेरा भरोसा
युद्धभूमि में आते ही मेघनाद ने , भयंकर हाहाकार मचाया
अग्नि ही अग्नि बहने लगी, ऐसा रौद्र वाण उसने चलाया ।

(409) सावधान किया विभीषण ने राम को, बता भतीजे की वीरता
कर वरुण देव की प्रार्थना, की श्री राम ने अद्‌भुत जलवर्षा
तुरन्त चली तेज हवा, छोड़ा था वाण मेघनाद ने वायव्य का
जिसके जवाब में छोड़ा राम ने मरुत, सारा वेग उल्टा बहा ।

(410) था नहीं कम मेघनाद, चलाया तुरन्त ही नागवाण
सहस्त्रों नाग लगे फुंफकारने, हर जगह दूर या पास
सांपों को उड़ाने श्री राम ने फिर छोड़ा गरुढ़ वाण
खत्म हुए नाग, उत्साहित बन वानर लगे करने वार ।

(411) हुई शाम किया राम ने इशारा बिगुल बजाने का लक्ष्मण को
बोले विभीषण, अक्सर मेघनाद यज्ञ कर मना लेता देवी को
वर मिलने के बाद , असंभव हो जाता उसे हराने को
गर हुआ पूर्ण यह यज्ञ, मांगेगा वर वो अजय हो जाने को ।

(412) उसे मारने, खंडित करना होगा यज्ञ, किसी भी तरह
हो सका तो वहीं मार देना होगा उसे, वही प्रहर
गए लक्ष्मण हनुमान संग, मेघनाद के यज्ञ की वेदी तरफ
मदिरा मांस की आहुति से लिप्त था हवन कुंड हर तरफ ।

(413) ललकारा , वहीं से पूजा देते मेघनाद को लक्ष्मण ने
आश्चर्यचकित मेघनाद लक्ष्मण को पुनर्जीवित देख के
मेरे वाणों से मरा, फिर भी जीवित ! ऐसा सोच के
मरा ही कब बोले लक्ष्मण, पूर्ण करूँगा यज्ञ तुम्हें मार के ।

(414) चलाया वाण, मेघनाद की भुजा कटी, अलग हुई शरीर से
मारने का संदेशा भेजा, भैया राम को, उसका सर वहीं भेज के
धड़ को भेजा रावण के पास, कर सके वो विश्वास आँखों से
दूजी भुजा उड़ कर पहुँची, सुलोचना के पास वाण प्रवाह से ।

(415) तड़प उठी पतिव्रता सुलोचना, देख कटी भुजा अपने पति की
नारी, निद्रा, अन्न त्याग करते वैसे बाहुबली प्रिय पति परमेश्वर की
जो हैं जेता परमवीर , समस्त पृथ्वी पर जीत है जिनकी
कौन मार सकता उसे, शायद है यह परीक्षा मेरे धैर्य की ।

(416) किंतु बोली दासी भुजा तो है युवराज की ही, हे युवरानी !
किंतु उनके रगों का खून ? नहीं हो सकता ठंडा सुलोचना बोली
हुई विचलित, फिर भी दे कलम, विवेकपूर्ण भुजा से की विनती
नाम लिखिए इसमें भेजने वाले का,जो हूँ मैं पतिव्रता साथी तुम्हारी ।

(417) मार सकता था मुझे लक्ष्मण ही, तुरन्त ही लिखा भुजा ने
सर है मेरा श्री राम के पास, धड़ द्वार पर लंका के
अपने प्राणनाथ का मरण देख, मानना पड़ा उसे सत्य ये
सिसकती, सुलोचना पहुँची, रावण के पास, युद्ध के कारक वे ।

(418) यह तो है युद्ध बोले रावण, वीर ही होते हैं शहीद इसमें
प्रहस्त, अक्षय ,कुंभकर्ण तक को सहा, दिल पर पत्थर रख के
किंतु यह दुःख नहीं सहन कर सकता, अपार हृदय विदारक ये
कैसे चुप कराऊँ पुत्रवधु सुलोचना को, हताश निराश, बोले वे ।

(419) हो तुम धीरजवान माँ, बहादुर बेटों की,मत खोओ धीरज हताशा में
था पूर्ण विश्वास मेघनाद पर, अब लौटा नहीं सकता मैं उसे तुम्हें
बोली सुलोचना चाहिए मुझे उनका सर,नहीं चाहती कोई ठोकर मारे
क्रोधित रावण, एक नहीं दो दूँगा, साथ लक्ष्मण का भी सर तुम्हें ।

(420) सिसकती मंदोदरी बोली, काश सुन ली होती आपने मेरी बात
ने देखने पड़ते ये दुर्दिन, न खोती मैं अपनी सब संतान
नहीं आसान राम-लक्ष्मण को मारना, सुनिए अब भी मेरे नाथ
सब कुछ खोने बाद भी, नहीं चाहती खोना तुम्हें मेरे प्राणनाथ ।

मन्दोदरी-रावण

(421) कहती हो मैं भीख माँगूँ प्राणों की, उस जंगली वनवासी से
इन्द्र जैसे देवता को मिली प्राणों की भीख, इस लंकापति से
डाले हैं शिवजी के सामने, अपने एक-एक सर काट कर मैं ने
जिसने उठाया कैलास पर्वत, वो मांगे भीख उन नर वानर से ।

(422) मेरे पुत्रों, प्रिय भाई कुंभकर्ण को मारने वालों से माँगूँ माफी
विभीषण जैसे पाखंडी को दिया शरण उससे माँगू माफी
इतना अभिमान होता नहीं अच्छा, बोली गुणी मंदोदरी रानी
सद्‌गुणी वीर के सामने, झुकने में ही होती है बुद्धिमानी ।

(423) फिर कातर स्वर में बोली, अपनी पुत्रवधू सुलोचना से
नहीं सुनेंगे ये कुछ भी, तुम्ही मिलो अवधकुमार श्री राम से
हैं वे बड़े क्षमाशील ,सुनेंगे तुम्हारी प्रार्थना धीरज-प्रेम से
तुम्हारे जीवन की यह अन्तिम चाह, पूर्ण करेंगे बिना तर्क के ।

(424) पहुँची सुलोचना राम के खेमे में विभीषण के साथ
परिचय पा बैठाया उसे श्री राम ने आदर के साथ
कहा गर्व से जानती हूँ ,युद्ध है विनाशकारी श्री राम
किंतु पूजा के वक्त, सर काट पास रखना,किसने दिया अधिकार ।

(425) शांत चित्त हो बोले राम, बहन समझ सकता मैं तुम्हारी मनोदशा
किंतु युद्ध के परिणाम होते हैं भयानक, इसे भी नहीं झुठलाता
भिजवाता तुम्हारे पति का सर ,ससम्मान जो मुझे कहलाया होता
चाहो तो पुनर्जीवित कर दूँ, जीए वे सैकड़ों साल . . हे पतिव्रता ।

(426) न था आने का संकोच, न आयी प्राणों की भीख मांगने आपसे
मेरे पति ने प्राणदान दिए लक्ष्मण को,ऐसे वीर के प्राण! क्यूं मांगू आपसे
किंतु नहीं है पराक्रम असावधानी में, किसी को मारना पूजा करते-करते
नहीं थी आशा इस तरह मारने की, आप जैसे वीर पराक्रमी कृपालु से ।

(427) इतना जानती हूँ ,फिर भी मेरे प्राणेश्वर को मारना नहीं था आसान
स्वयं पति की कटी भुजा ने लिखा, लक्ष्मण यती हैं साधक महान
छोड़ लक्ष्मण को, कोई भी नहीं ले सकता था, मेरे पति के प्राण
नहीं है शिकायत, दीजिए मुझे उनका सिर, जो है मेरा सम्मान ।

(428) आज्ञा दी श्री राम ने लक्ष्मण से, सर वापस करने की
लक्ष्मण थे अभी भी अविश्वासी, देख कटी भुजा की लेखनी
नहीं असंभव था यह मेरे पति के लिए पतिव्रता बोली
चाहे तो ले लो परीक्षा मेरे पराक्रमी पति के लिए मेरी ।

(429) मुझे देख वे अभी हंसेंगे, जो मेरा पतिव्रता धर्म है सच्चा
की है मैंने तन मन धन से सेवा, पूज्य मेरे लिए आपकी वीरता
मरणोपरान्त नहीं हैं दु:खी, दिखा दीजिए लक्ष्मण को अपनी सौम्यता
सच में सर था हंसा, सुलोचना के पतिव्रता धर्म ने सबको था जीता ।

(430) इधर मंदोदरी के दु:खों का पार न था, पीड़ा बनी असह्य दर्शाने को
अपने सारे पुत्रों का बिछोह! काफी था ममता के क्रन्दन को
हिम्मत कर सौम्यता ला, मंदोदरी ने समझाना चाहा, पति परमेश्वर को
एक-एक कर सब चले गए,अब तो जिद छोड़ संभालिए लंका को ।

(431) कहा विवेक से, हमारे खेमे में अब कोई भी नहीं बचा
उधर सारे वीर लड़ रहे और सब के सब हैं जिन्दा
क्यों एक नार के पीछे तबाह कर दी आपने सारी लंका
अभी भी समय है नाथ, मान जाइए, लौटा कर इन्हें सीता ।

(432) प्रत्युत्तर दिया रावण ने, पुत्र विरह में मैं भी हूँ दु:खी
पुत्र विछोह बाद पति खोने के डर से, तुम चिन्तित तो नहीं
किंतु पीछे मुड़ कर देखना, अब मेरे लिए मुमकिन नहीं
मेरे मासूम प्रजा की जान का बदला, लेने की है ये घड़ी ।

(433) विश्वास नहीं तुम्हें पति पर, करूँगा लड़ाई मैं स्वयं ही
अंततः होगा घमासान युद्ध विजयी भी हूँगा मैं ही
रहेंगे हम, तुम और सीता, बसेगी शांति यहाँ भी
मैं हूँ लंकेश, रखो विश्वास, घबराती हो तुम यूं ही ।

(434) देखते देखते दी आज्ञा सारथी को रथ तैयार करने की
नगाड़े बजे, आज जाएँगे लंकेश युद्ध में स्वयं ही
बची खुची सेना, फिर से जोश में थी सजी-संवरी
भीषण युद्ध के लिए,कृत संकल्प रावण,लिए मन में वैदेही ।

(435) मन में आंसुओं का अम्बार, सर्वगुण, पर लाचार थी मंदोदरी
ममता ने सदैव रखा पत्थर, बेवसी की चरम सीमा थी मंदोदरी
पतिव्रता धर्म में सजग आँखें, संवेदना का सवाल थी मंदोदरी
शील के सामने जीत थी अहंकार की, समझ रही थी मंदोदरी ।

(436) देखते ही देखते बजे नगाड़े, जयजयकार हुआ रावण का
उधर बिगुल बजे, अवधकुमारों राम-लक्ष्मण की जय का
था हर तरफ शोर, फिर भी था नीरव, गजब का सन्नाटा !
दो चरम बिन्दु का मिलना, शील-अहंकार का आमना-सामना ।

(437) समीप राम के आते ही बोला रावण, अति प्रसन्न मैं हूँ आज
उस वीर-नर का आखिर में , मैं कर रहा साक्षात्कार
प्रणाम करता तुम्हारी वीरता को , पर अब बचाओ प्राण
सुसज्जित अस्त्रों संग सामना करने का , देता तुम्हें आशीर्वाद ।

(438) प्रत्युत्तर दिया राम ने ऐसी उदारता, ऐसे होनहार प्रण को प्रणाम
हो सच में तुम महान ,वीरों के वीर तुम्हें शत्-शत् प्रणाम
तुरन्त बोले रावण ,किंतु तुम्हारे अपराधों की सूची नहीं है आम
एक नार की खातिर, तुमने लिए कई-कई वीरों के प्राण ।

(439) किस-किस को गिनाऊँ, खर-दूषण-मारीच-त्रिशिरा एवं शूर्पणखा
हनुमान को दूत बना, तहस-नहस कर जला डाली मेरी लंका
मेरे सभी पुत्रों को मार, मेरे प्रिय भाई कुंभकर्ण को मुझसे छीना
लक्ष्मण ने मेघनाद को मारा, जब तल्लीनता से कर रहा था पूजा ।

(440) एक सीता की खातिर, कई सुहागिनों के, मिटाए सिन्दुर
पतिव्रता सुलोचना को भी, विधवा बना, छीना उसका नूर
एहसास नहीं तुम्हें अपने कृत्य का, दिखाते खुद को शूर
विभीषण को मेरे खिलाफ लड़ा, किया उसे भी मुझसे दूर ।

(441) हँसकर बोले श्री राम, सीता को पा जाना नहीं था लक्ष्य मेरा
गर होता यही, क्योंकर मैं अयोध्या ही खुशी से छोड़ता
जो होती वही मेरे जीवन की गति, पिता के वचन मैं ठुकराता
वन में आना धर्म था मेरा, न पिता के वर की विवशता ।

(442) मिटाना था पृथ्वी से, अन्याय शोषण हिंसा एवं दुराचार
मूर्खता है सोचना ,यह सब किया क्योंकि सीता से है प्यार
सीता की रक्षा, मेरी पत्नी की रक्षा, सर्वदा है मेरा धर्म
किंतु शोषण अराजकता मिटाने का था ये सब माध्यम ।

(443) नियति थी यही, इसे भी राम-रावण युद्ध था स्वीकार
चाहता तो मैं अयोध्या से सेना ला, करता तुम्हारा उद्धार
किंतु नहीं, इन रीछ वानरों की सत्यता, है मेरे लिए महान
इनके पवित्र दिलों के साथ,अब सुनिश्चित है तुम्हारी हार ।

(444) वाह ! सुन बातें राम की व्यंग्य से मुस्कुरा रावण बोला
देश निकाला पिता ने नाम चतुराई से दिया उद्देश्य का
ले साथ इन वानरों का, बाली को छिपकर तुमने मारा
दिखा नहीं तब न्याय, धोखे सें जब मेरे मित्र को था मारा ।

(445) था बलशाली बाली किन्तु अनीति अन्याय से था वो भरा
इन दलित गरीब आदिवासियों,को पल-पल शोषण था हो रहा
अतिश्योक्ति में धर्मांध बन, भाई की पत्नी को भी न छोड़ा
ऐसे राक्षसीपन को मिटाना ही, मेरा उद्देश्य रहा और था ।

(446) बोला रावण, है यह युद्धभूमि! छोड़ो ये सारी चिकनी-चुपड़ी बात
है समय अभी भी, सब कुछ भूल, क्षमा मांग लो चुपचाप
तुम्हारी गलतियाँ बता रहा, नहीं ये संभाषण तुम्हारे साथ
समय रहते मांग क्षमा, अपनी और अपने भाई की बचाओ जान ।

(447) आरोप लगाकर बनना चाहते हो विजयी, प्रत्युत्तर दिया राम ने
ऋषि मुनियों को आतंकित कर, कोहराम मचाया था तुम ने
खर-दूषण, मरीच ताड़का को भेज, तपोवन खून से रंगा तुम ने
उन्हें उकसाते थे तुम, झूठे आडम्बर, यश के लिए अपने ।

(448) धोखे से बड़ा होता नहीं कोई पाप जो किया तुमने
किया सीता का अपहरण, बहन के बदले के लिए तुमने
ले सकते थे मुझसे अकेला बदला,किंतु खोट थी तेरे दिल में
तुम्हारे भाई, पुत्रों के प्राण लिए, तुम्हारे ही अहंकार ने ।

(449) क्रोधी रावण फुफकारता बोला, मुझे सिखाते धर्म नीति
कभी देवता, नाग, गन्धर्व से जानी नहीं मेरी हस्ती
देवराज इन्द्र ने बतायी नहीं बात, अपने हार की
अभी भी है समय, क्षमा मांग लो अपनी गल्तियों की ।

(450) नहीं तो उठाओ अस्त्र, करो सामना इस वीर का
बोले राम, आक्रमण में, मैं नहीं कभी पहल करता
हो तुम अकेले वीर, तुम्हारी सेना की टुकड़ी का
कहो किससे लड़ोगे, या करोगे मेरा ही सामना ।

(451) लंकापति हूँ मैं, अहंकार रावण का पुनः बोल उठा
लड़ूंगा तुमसे ही, आ जाओ, बहुत संभाषण हुआ
देखते ही देखते रावण के अग्नि वर्षा से कोहराम मचा
तुरन्त ही जल वर्षा से ,शीतलता का आभास हुआ ।

(452) किसने काटा मेरा वाण, कौन है यह मूर्ख रावण बोला
कहा उसके सारथी ने, है यह लक्ष्मण जो दूर खड़ा
क्रोधित रावण झपटे उस और, लेने मेघनाद का बदला
हुए अचेत लक्ष्मण, संभाल न पाए वाणों की वर्षा ।

(453) शाम थी होने को आयी, युद्ध में हुआ विराम
चिन्तित प्रभु राम दौड़े, तुरन्त ही लक्ष्मण के पास
थे शिविर में पहले के पर्वत के जड़ी बूटी खास
पल में वैद्य जी को लाए हनुमान करने उपचार ।

(454) आते ही होश, लक्ष्मण बड़बड़ा उठे, मारता हूँ तुम्हें
बोले प्रभु युद्ध में है विश्राम, तुम्हें अचेत किया रावण ने
है बलवान रावण, तुम्हारे जिद से भेजा वहाँ तुम्हें मैं ने
परन्तु अब जाऊँगा, मैं स्वयं अकेले ही रावण से लड़ने ।

(455) हुआ भयंकर युद्ध दूजे दिन, राम रावण मध्य
इतने में दुश्मन खेमे से जय श्री राम कहते आया रथ
चकित थे सब, है यह कौन, जो वैभव का था मानो पथ
था वो सारथी मातलि इन्द्र का,आया राम का सारथि बन ।

(456) बोले प्रभु राम,हूँ वनवासी लडूँगा, वानर,रीछ जैसा, मैं जमीन पर
देना धन्यवाद इन्द्र को, लड़ नहीं सकता मैं, रथ पर बैठ कर
हूँ वनवासी,उनकी तरह खुले पाँव ही रहेंगे, मेरे भी जमीन पर
आभारी हूँ देवता इन्द्र का, लौट जाओ तुम फिर से वहीं पर ।

(457) इतने में बदहवास सा लक्ष्मण बोले प्रभु राम से
जूझ रहे हैं सुग्रीव, जामवन्त, मिल कर रावण से
आज्ञा दें मुझे मैं जाऊँ लड़ने, उस दानवी रावण से
बोले राम है वो पराक्रमी, युद्धकला का महारथी युगों से ।

(458) एक समय मैं , बेहोशी में गिर पड़ा था लड़ते लड़ते
तब हनुमान ने सहा वार, मुझे ढका था संभालते संभालते
चाहता तो रावण कर सकता था वार, फिर से वहाँ आ के
पर अपने कपड़े फाड़ पोंछने लगा मेरे घाव जो बहे थे रिसते ।

(459) रथ से उतर मेरी सेवा करना , थी उसकी महानता
श्रेष्ठ युद्धशास्त्री के साथ, उसमें थी रण नियम की पारंगतता
सुन बोले लक्ष्मण, अब आप को दिखने लगी उसमें सज्जनता
उस दुष्ट पापी अहंकारी में, दिखती है आपको विद्वता !

राम-रावण मध्य युद्ध

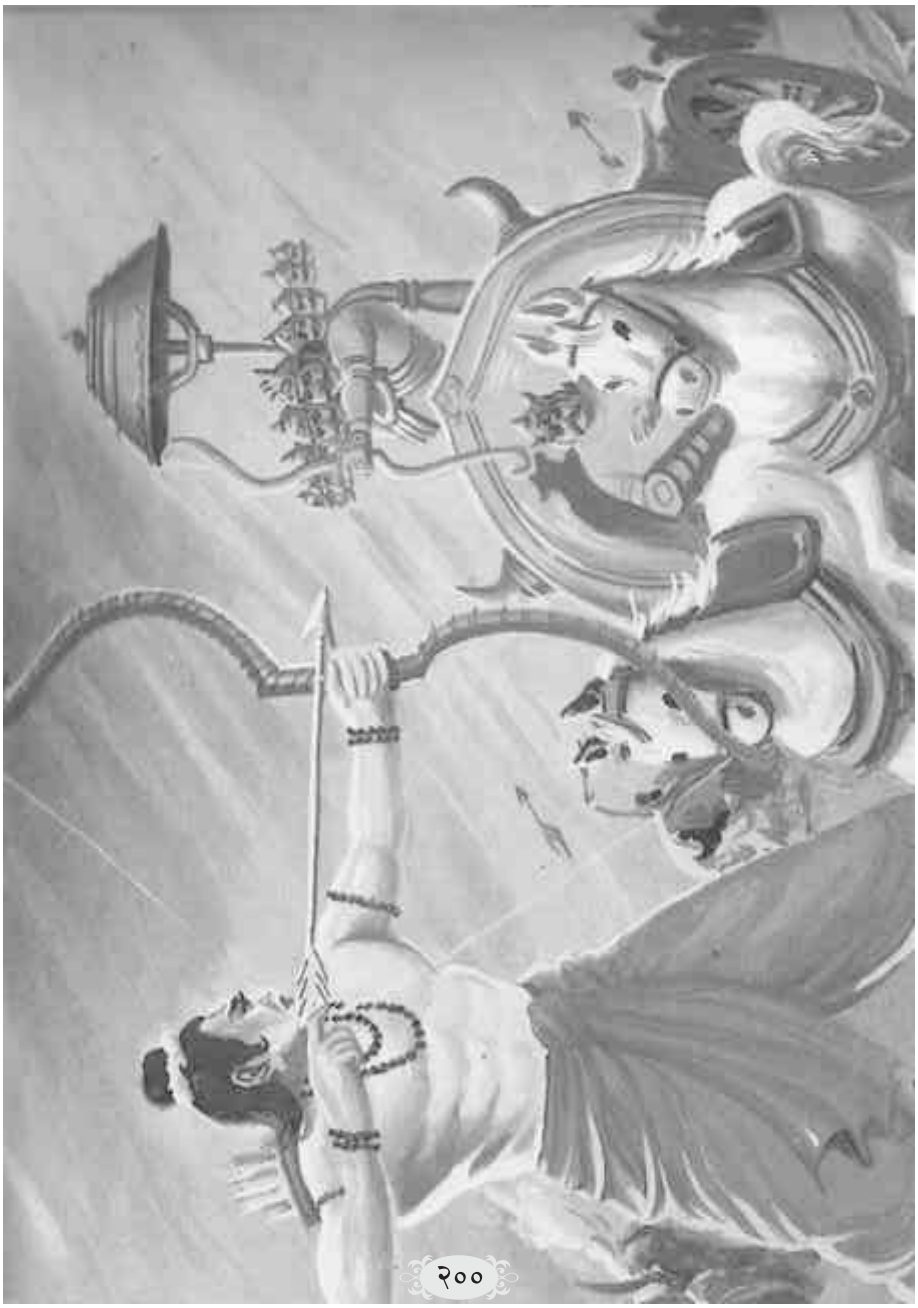

(460) प्रत्युत्तर दिया राम ने, इन्हीं बुरे पक्षों के कारण मैं हूँ प्रतिबद्ध
दूजी अच्छाइयों के बावजूद यही युद्ध है उसका प्रारब्ध
कहा राम ने विभीषण से, हमारी तरफ से करो आप युद्ध
बोले विभीषण था मैं , उत्सुक, सुनने को ये आपके शब्द ।

(461) हुआ धमासान युद्ध, दोनों भाइयों के मध्य में
आक्रामक बन रावण को, किया मूर्छित विभीषण ने
आँख खुलते ही बोले रावण, जाना है मुझे युद्ध भूमि में
आज युद्ध हुआ समाप्त, समझाया रावण को सारथी ने ।

(462) गरजकर बोले रावण, हूँ अजय मैं, हूँ अमर मैं
छोड़ूँगा नहीं राम -लक्ष्मण- विभीषण तीनों को मैं
राम-लक्ष्मण के कटे सर, सीता को दिखाऊँगा मैं
आजीवन सीता रहेगी मेरे पास, ये सिद्ध भी करूँगा मैं ।

(463) बेसब्री से इंतजार करने लगा रावण सुबह का
होते ही सुबह दहाडा और रणभूमि में, राम से कहा
आज तुम्हें भाई संग मार,देशद्रोही विभीषण को है मारना
बच न पावोगे तुम तीनों ,आज सब को है प्राण गंवाना ।

(464) हंसकर बोले राम, विभीषण से नहीं, लड़ो मुझसे आज
तुम्हें मार विभीषण को देना है लंका का राज
दहाड़ा रावण, अजर अमर के सामने तुम्हारी क्या बिसात
मेरे सामने इतनी हिम्मत ! कैसे करी ये ओछी बात ।

(465) अब तो उठाया प्रभु ने, देखते देखते तीर कमान
किया सर धड़ से अलग, मानता था जो खुद को महान
पर यह क्या ! नया सर लग गया था आश्चर्य के साथ
फिर से काटा सर, किन्तु नया चेहरा!बचे थे उसके प्राण ।

(466) असमंजस में प्रभु ने बुला भेजा, उसी क्षण विभीषण को
बोले जुड़ जाते सर, हाथ, फेंको चाहे किसी भी अस्त्र को
अब आखरी अगस्त्य मुनि का शस्त्र, बचा संहार करने को
होगी मुश्किल, जो उसे भी चला दिया, अंततः उसे हराने को ।

(467) बोले विभीषण प्रभु से, नाभि में है अमृत कुंड, रावण के
आसान होगा उसे मारना, गर मारकर वहीं उसे सुखा दें
यही किया प्रभु ने , आखिरी अस्त्र फेंका,उसी नाभिकुंड में
हुए निःसहाय , महाबली अहंकारी रावण, उसके सूखने से ।

(468) देखते ही देखते, गिर पड़े धरती पर रावण राजा महान
बोले हे राम, तुमने मुझे मार डाला, नहीं था वो आसान
सच हो गया था अहंकारी मैं, देवत्व अंगूठे तले दबा
मेरे तपते बदन पर आ के, दो छांव मुझे हे राम ।

अंततः रावण का वध

(469) हे लंकापति, तुम्हारी महानता को कभी न माना मैं ने कम
तुममें संलग्न दुष्टता का विरोध रहा था मुझे हरदम
वही राक्षसपन जिसमें लोभ-अहंकार-क्रोध का था संगम
इसी दुष्ट प्रकृति से राक्षस नाम का हुआ था जन्म ।

(470) मत समझना राम, तुम हो मुझसे श्रेष्ठ, बोले रावण
अभी भी मानता हूँ खुद को ही मैं सर्वश्रेष्ठ, हे राम
और सच पूछो तो हूँ ही चाहे जो भी दो तुम नाम
हाँ सही चयन का हो सकता है अभाव, अधिक या कम ।

(471) बोले राम, आप की श्रेष्ठता पर कब था मेरा प्रश्न
अन्याय शोषण अहंकार अनीति की थी ये लड़त
वनवासी का रूप ले, मुझे करना था इसका अन्त
हुआ सार्थक मेरा यह रूप,आज पूर्ण हुआ मेरा प्रण ।

(472) जो भी हो राम, अच्छा ही किया जो तुमने मुझे मार डाला
अनीति, शोषण, अहंकार इत्यादि , प्रतीकों को कुचल डाला
आनेवाली पीढ़ियों के लिए, अच्छाई का प्रतीक तुम बने रहना
किन्तु इस पूर्णता में, मेरे प्रयास का भी जरूर ख्याल रखना ।

(473) तुम्हारी प्रतिज्ञा बनी रहे, इसका मैं ने पूरा प्रयत्न किया
तुम्हारी अर्द्धांगिनी सीता को, न मैं ने महल, न नगर में रखा
उस देवी उस पतिव्रता को,कभी छूने का भी न प्रयास किया
अशोक वाटिका में रख, सर्वदा ही मैं ने उसे, आदर दिया ।

(474) भले राम ने रावण को मार अनीति, अन्याय का अंत था किया
किंतु भली भांति परिचित थे, किस महापंडित का नाश हुआ
लक्ष्मण संग उस महान शिव भक्त का, अंतिम प्रणाम किया
पूरी सेना संग श्रद्धांजलि दे,रावण की विद्वता को नमन किया ।

(475) रो पड़े विभीषण, महान नीतिज्ञ बड़े भाई की अंतिम दशा देख कर
महान पराक्रमी,कार्यकुशल,दशानन का निर्जीव देह रेत पर देख कर
संसार को आतंकित करने वाले, अपने बड़े भाई की एक भूल पर
जिस माथे पर सूर्य सा था प्रखर तेज, वही अंधेरा !आज देख कर ।

(476) दे नहीं सकता भैया कुछ तुम्हें, आँसूओं के अर्घ्य के सिवा
काश विद्वता ओढ़ पाती, तुम्हारे अहंकार का आवरण हटा
ढाढ़स दिया प्रभु ने, विभीषण को समझाया, धीरज से कहा
रावण था वीर महान,यह तो उसका अहंकार,जो है मरा ।

(477) मेरे लिए ये आज हैं, आदर के पात्र, तुम्हारी तरह प्रिय
वैर आजीवन रहता नहीं, समाप्त हो जाता ,जीवन के संग
समस्त लंकावासियों को संभाल,कर्मठ कर लो अपना मन
धीरज के आभूषण से, आज लंका को दो तुम नया रंग ।

(478) समाचार सुन आँसूओं की सेज पर,मंदोदरी का था बुरा हाल
फफकती बोली, कितनी बार रोका था, पांव पकड़कर नाथ
काश सुन लेते तो वो न होता, जिस देख सुन रही मैं आज
बोले विभीषण, अश्रु में भीगे, काश मेरी भी सुनी होती बात ।

(479) असहनीय कातर मंदोदरी बोली ,अब आए भाई का पक्ष लेकर
सगे भाई होकर भी लड़े, दुश्मनों को अपना बनाकर
करूँगी वीरता की अंत्येष्टि, राजधर्म के संस्कारों को ले कर
त्यागा एक महान योद्धा ने प्राण, वीरता की मिसाल बन कर ।

(480) आगे की विचार विमर्शता खातिर, तुरन्त बुलवाया मंत्री गण को
बोली जाने न दूंगी व्यर्थ, अपने वीर पुत्रों एवं पति के प्राणों को
न दूंगी अपने वीर पति का राज्य, इन वानर, भालू, रीछों को
उनके रहते थी असहमत! पर आज दूंगी साथ उनकी नीति को ।

(481) बोले मंत्री ,सेना में न कोई बचा वीर, जो हैं, उनकी हालत है गंभीर
प्रत्युत्तर विभीषण का, नही इसकी जरूरत,यहाँ विराजे, लक्ष्मण वीर
आए होंगे हमें बंदी बनाने, बोली अपार दु:खी मंदोदरी, हो अधीर
कह दो उसे, लडूंगी आखरी दम तक, हो चाहे ये कितने भी वीर ।

(482) विनम्रता में लक्ष्मण, आए हम विभीषण का, राज तिलक करने
उन्हें राजा बना, राजमाता के सारे अधिकार आपको सौंपने
चाहा नहीं था , कभी भी आपका राज्य, सपने में भी हमने
लंका है आपकी,लंकावासी स्वतंत्र जैसे थे वे रावण के राज में ।

(483) हर्ष- आश्चर्य मिश्रित स्वर मंदोदरी में, था भरमाया
धन्य हैं राम, राज्य जीत कर भी स्वतंत्र हमें कर डाला
विभीषण को बना राजा, हमारे अधिकारों से न वंचित किया
बहन सीता को ससम्मान ,अब हमें आपको है लौटाना ।

(484) पहुँची मंदोदरी सादर सीता को लेकर राम के पास
कर अभिवादन प्रभु का कहा, सीता लौटाना, प्रयोजन था खास
स्वीकार अभिवादन बोले प्रभु, पूर्ण न कर पाया मैं आपकी आस
कुछ भी निश्चित नहीं जहां में, किन्तु निश्चित है आखरी सांस ।

(485) है यह दु:खद, किन्तु इसे बदलना नहीं ब्रह्मा के भी हाथों में
आभास मेरे पति को था ,पहले से ही, प्रत्युत्तर दिया मंदोदरी ने
थे इसलिए अटल आखरी सांस तक, वे युद्ध जारी रखने में
जानते थे अंतत:, लिखा है अंत उनका आपके ही हाथों में ।

(486) सेतुबंध यज्ञ में, ब्राह्मण बन धर्म निभा, रावण ने आपको दिया आशीर्वाद
अपनी सीता प्राप्त कर, इनके कष्ट के लिए कीजिए हमें सहृदय माफ
सारे इनके दिए, दु:ख दर्द के लिए ,मांग सकती मैं, नतमस्तक क्षमा
बोले प्रभु,सीता पुन: सुरक्षित पाना,है अलभ्य सुख,जिसका नहीं कोई माप ।

(487) किन्तु विचलित हो उठे राम, स्वीकार नहीं सकता जानकी मैं तुम्हें
बारह महीने जो पर पुरुष संग रही, कैसे स्वीकारूँ मैं तुम्हें
किंकर्त्तव्यविमूढ़ सीता! ठगे से लक्ष्मण बोले,यह क्या कह दिया आपने
विक्षेप किया मंदोदरी ने,अग्नि, गंगाजल से ज्यादा पवित्रता है सीता में ।

(488) अशोक वाटिका में मैं उनके साथ थी सर्वदा, इनका कभी स्पर्श तक न किया
इनकी पवित्रता में प्रश्न चिह्न ! घोर अपमान है सम्पूर्ण नारी जगत का
सहनशील सीता, तैयार हूँ फिर भी देने को, मेरे आर्य की हर परीक्षा
कैसे कहूँ, आपके विरह का एक-एक क्षण मर-मर कर मैं ने था काटा ।

(489) अवधपुत्र श्री राम ने चाहा , सीता को देने भीष्ण अग्नि परीक्षा
बोले गर होगी निष्कलंक, निखर कर आएगी बाहर मानो सोना
एक क्षण बिना विलम्ब सतीत्व की रक्षा हेतु तैयार थी सीता
जानते थे राम, फिर भी सतीत्व ललकारना,कैसी थी ये विडम्बना !

अग्नि परीक्षा देती हुयी सीता माता

(490) जो मन ,वचन ,कर्म से थी समर्पित अपने आर्य की सदा
आज उसे स्वीकारने में आर्य पुत्र, ले रहे थे परीक्षा
धन्य भारतीय नारी जिसके धैर्य ने, फिर भी की सतीत्व की रक्षा
स्वयं अग्नि देव ने प्रगट होकर, सीता को राम को सौंपा ।

(491) बोले अग्निदेव, महारानी सीताजी हैं निष्पाप, पवित्रता की मूर्ति
आपको सौंप कर उसे मैं पा रहा मन में अद्‌भुत शांति
प्रणाम अग्निदेव को कर बोले, यह तो थी मर्यादित भ्रान्ति
सीता, तुम तो जन्मोजन्म से हो मेरी प्रेयसी, मेरी ही शक्ति ।

(492) तीन दिन रह गए थे शेष, सिर्फ वनवास समाप्ति के
दे सबको धन्यवाद श्री राम ने ,आज्ञा लेनी चाही सब से
होंगी चिंतातुर माताएँ, जो समय पर न पहुँचा अयोध्या में
और प्रिय भरत, धीरज छोड़, खड़े पैर, दौड़ा आएगा वन में ।

(493) मैं हूँ आभारी सभी वानर, रीछ, वृद्ध, बच्चे सभी प्राणियों का
रहूँगा आजन्म आभारी बोले राम, हर एक छोटे बड़े बंधु का
विभीषण से ले आज्ञा,अवध तक छोड़ने का रथ तैयार करवाया
मंदोदरी को कर प्रणाम, प्रभु ने सब योद्धा को गले लगाया ।

(494) सुग्रीव,अंगद,जामवंत,हनुमान,गवादा,नल-नील,सुषेण से ली विदा
जीत का श्रेय प्रभु ने हर वीर योद्धा को आभार सह दिया
भावविह्वल बन,सबको अवध आने का प्रेम भरा आमंत्रण दिया
विनीत अभिवादन, हर्ष मिश्रित नैनों से हर एक को किया ।

(495) सजल नयन मुस्कुरा उठे , पुनः हनुमान को देख कर
डूबा रहूँगा तुम्हारे ऋणों से, रहना मेरे सगे भाई बन कर
अब न रहेगा अकेला राम, होगी सबकी दृष्टि तुम पर
हनुमान के बिना राम की कल्पना! नहीं हो सकती धरा पर ।

(496) सबको लिए राम, सीता, लक्ष्मण संग बैठे पुष्पक विमान में
दिखाते गए सीता को हर स्थल, जहाँ लड़े थे वे राक्षसों से
नल-नील निर्मित, शिव-पार्वती मंदिर, था जो स्थापित उनसे
सरोवर, रमणीय स्थल दिखा, हर्ष-विभोर थे स्वयं खुद से ।

(497) याद थे प्रभु को सारे प्रिय जन अपने वन आगमन समय के
दिया धन्यवाद निषाद राज को,बितायी रात भारद्वाज आश्रम में
वैदेही ने भी सकुशल लौटने का,आभार प्रकट किया मन से
चढ़ाई चुनरिया गंगा मैया को,हुए नयन सजल आत्मीय भाव से ।

(498) बिना विश्राम किए चले हनुमान अयोध्या संदेश देने
नन्दिग्राम में थे भरत उन्हें शुभ समाचार पहुँचाने
देखते ही हुनमान को,पूछा भरत ने, संत सरीखे प्रभु प्रिय से
कृपया पधारने का आयोजन बताइए,मुझ श्री राम अनुज से ।

चौदह वर्षों पश्चात,अयोध्या में प्रभु का आगमन

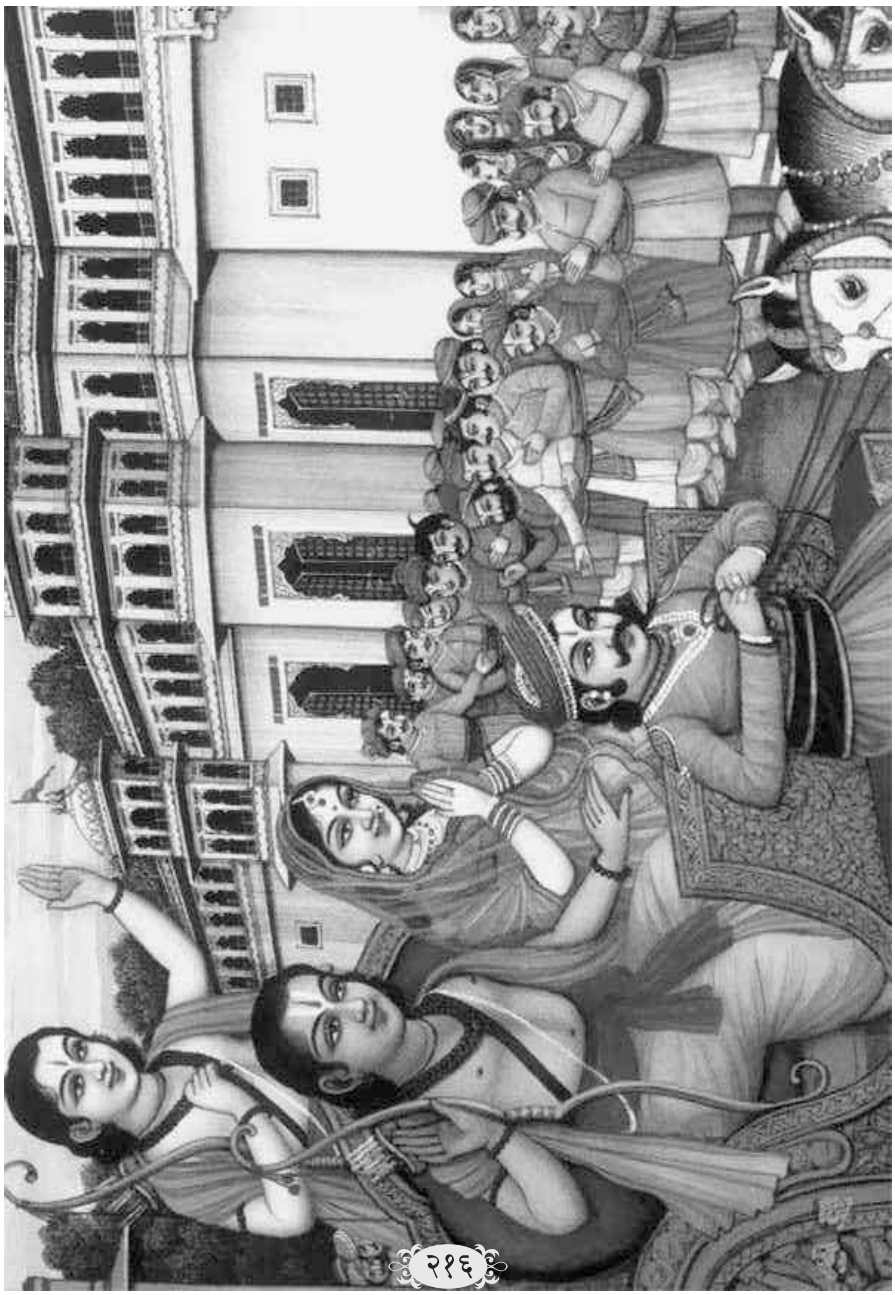

(499) प्रणाम कर बोले हनुमान, पधार रहे श्री राम अयोध्या को
लेकर साथ सौभाग्यशाली सीता एवं अनुज लक्ष्मण को
सुखद आश्चर्य !हर्ष-मिश्रित,अश्रु की धार भिगो रही थी भरत को
प्रेम-फव्वारे हनुमान के, बोले कल प्रातः पहुँचेंगे वे अयोध्या को ।

(500) खुशी आनन्द से बेहाल, दौड़ाने लगे भरत सेवकों को
जावो शीघ्र शुभ समाचार पहुँचाओ सभी माताओं को
दीप जला दीवाली मना, सजावो दुल्हन सी पूरी अयोध्या को
घर-घर मिठाई बांट, ढोल नगाड़ों से, गुंजित करो नगर को ।

(501) आगवानी करने भैया-भाभी को, खुद उसी समय चल पड़े
विमान से उतरे श्री राम, गिर पड़े भ्राता भरत उनके चरणों में
गले लगा अपने प्रिय अनुज को, भाव विह्वल प्रभु, स्नेह से
दोनों भाइयों का सुखद मिलन,संपूर्ण अयोध्या रोमांचित हर्ष से ।

वनवास पश्चात् राम-भरत मिलन

(502) हर्ष की अंसुवन धार संग बोले भरत, आज चैन लेंगी मेरी सांसें
चौदह साल का विरह, आज होंगी सही, मेरे दिल की धड़कनें
हुए तुम इतने दुर्बल, बोले बड़े भैया अनुज से गले लग के
कर प्रणाम बोले शत्रुघ्न, की सेवा राज्य की, छोटे भाई के नाते ।

(503) भैया से मिलन उपरान्त, मिले भरत-शत्रुघ्न, लक्ष्मण-सीता माता से
था वो अनुपम दृश्य, विनय-प्रेम ओतप्रोत, अपनी चरम सीमा पे
मिलवाया राम ने सबको विभीषण, जामवंत, वानरराज सुग्रीव से
द्विविद, जामवंत, नील-नल , सभी सहायता करने वाले मित्रों से ।

(504) सबका आभार मान, भरत ने किया प्रेम से अभिवादन संग नमन
इतने में आए वशिष्ठ, राम-लक्ष्मण-सीता ने किया सादर वंदन
आशीर्वाद दे बोले मुनिवर, रहे तुम सबकी कीर्ति सदा अमर
इतिहास याद रखेगा, त्याग के बाद का अद्‌भुत, सौहार्द्रित मिलन !

(505) हर्ष के आँसू थमते नहीं माता कौशल्या के, ममता थी निहाल
चौदह वर्ष के वियोग बाद ,था यह अत्यंत सुखद संयोग आज
देख मंझली मां को आते, तीनों ने तत्परता से किया प्रणाम
अपराधिन सी कैकेयी, कर देना मेरे बच्चो मुझे क्षमा आज ।

(506) बोले राम मंझली माँ , इतने राक्षस मरे आपकी ही आज्ञा से
न विवश करती आप हमें जाने को,न मुक्त होता संसार पाप से
है यह उपकार आपका,जो संसार मुक्त हुआ समस्त बुराइयों से
अंत तक साथ देनेवाले पुत्र लक्ष्मण को, गले लगाया सुमित्रा ने ।

(507) असली वनवास छूटा उर्मिला का, छूए पाँव बड़े भैया के
बोले राम, हम सबको छूने चाहिए आज पाँव तुम्हारे
इतिहास याद रखेगा तुम्हारा त्याग, रघुकुल वंश में
लेगा संसार विश्वास श्रद्धा से तुम्हारा नाम पतिधर्म में ।

(508) मंत्री , अयोध्यावासी मिले सभी, प्रेम उत्साह संग श्री राम से
सभी माताएँ माण्डवी,उर्मिला, भरत, मिले राम-सीता-लक्ष्मण से,
चारों दिशाएँ पुलकित,अयोध्या जगमगा उठी दिए की रौशनी से
भरत ने अर्पित की चरण पादुका प्रिय बड़े भाई को, सम्मान से ।

(509) पहन चरण पादुका स्वीकारा, राज्य का उत्तरदायित्व श्री राम ने
विनीत राम कर जोड़ बोले, हूँ सेवक न समझना राजा मुझे
देता हूँ आश्वासन , नियम कानून होंगे सर्वोपरि इस राज में
गर अनीति करूँ मैं ,हक है सबको दंडित करने का मुझे ।

(510) उधर उर्मिला-लक्ष्मण के मिलन के क्षण थे अति लुभावन
चौदह वर्ष की बातें, वियोग की रातें, महका रही थी प्रेम उपवन
उर्मिला का क्षीण मन पति वियोग में कमजोर, कुम्हलाया तन
विह्वल लक्ष्मण,देख प्रेयसी की मनोदशा,मानो था उसका अभिन्न अंग ।

(511) बोले लक्ष्मण, है यह फल तुम्हारे प्यार, व्रत, साधना, प्रार्थना का
जो मेघनाद के हाथों मरकर भी, मृत्यु से नहीं था हारा
देकर अपने शरीर को कष्ट करती रही,हमेशा मेरी मंगलकामना
हो श्रेष्ठ सब बहनों में,तुम्हारी कृशकाया दिखे,हड्डियों की माला ।

(512) होगा तुम्हारा नाम जब भी रचेगा अवध का इतिहास
न भूलेगा कोई भी, तुम्हारी शील-मर्यादा, तुम्हारा त्याग
उत्साहित होंगी पतिव्रता नारियाँ याद कर तुम्हारा यह संवाद
भावविभोर थे लक्ष्मण, गौरवान्वित, पाकर सुनहरा साथ ।

(513) मैं ने रक्षा की,सिर्फ अपने पति के त्याग की, बोली विनयी उर्मिला
है बलिदान आपका, रेखांकित करेगा इतिहासकार आपकी महानता
इन्द्रजीत के मरण पर,तभी तो आश्चर्यचकित थी पतिव्रता सुलोचना !
क्योंकि मार सकता था उसे, कठोर, तपस्वी, त्यागी साधक तुम सा ।

(514) ब्रह्मचारी व्रत निभा, अन्न निद्रा त्यागने वाला ही मार सकता था उसे
ली जानकारी सुलोचना ने, धड़ विहीन हाथों से लिखे पति के पत्र से
आप बड़े साधक, मैं आपकी सहगामिनी, बोली हर्षित उर्मिला पति से
वियोग-मिलन बाद अंततः बोले लक्ष्मण, प्रिय न छोड़ूँगा अब मैं तुम्हें ।

(515) उन्मुक्त प्रणय धारा ने,चौदह साल की दूरियों को बसाया था पल में
इधर माण्डवी ने किया था वरण अंधेरे का, इन चौदह वर्षों में
पास रह कर भी पति के, जीया था वियोग चरम सीमा में
था यह कैसा उज्ज्वल प्रेम,दूर रह कर भी प्रकाशित पति के दिल में ।

(516) लक्ष्मण भैया तो थे वन में, इसलिए थी अकेली उर्मिला
किंतु मुझे आपके दर्शनार्थ, नंदीग्राम जाने की भी न थी आज्ञा
बोली माण्डवी जो दूर थे,उसके लिए पास की क्या अभिलाषा
मुश्किल था पास रहकर भी, बढ़ाना जुदाई का सिलसिला ।

(517) बोले भरत, यह मेरा धर्म कर्त्तव्य और प्रण था माण्डवी
भैया-भाभी वन में, मेरे लिए राजसुख कांटों सा था माण्डवी
आपके कठिन जीवन की खबर सुनती थी जब,आहत सी बोली माण्डवी
सेवा न कर पाने का दु:ख,चीर कर जाता दिल, सिसकती रही माण्डवी ।

(518) मत रोवो मेरी प्रिये, तुम्हारे त्याग, संकल्प का ऋणी रहूँगा सदा
जिस कुल में सीताजी, उर्मिला तुम जैसी संकल्पशील नारी हो जहाँ
उस संकल्प शक्ति, उस मौन की समस्त संसार करेगा आराधना
आओ पास हमारे, वियोग बाद मिलन में है प्रेम की सार्थकता ।

(519) बच्चों सी बिलखती बोली माण्डवी, नाथ अब न दूर करना मुझे
चाहे निकले मेरे प्राण इन बाहों में ही, समेटना तुम मुझे
बहुत सही जुदाई, अब इन चरणों से दूर न करना मुझे
भाव विभोर भरत, तुम्हारे प्राणों में मेरे प्राण, न दूर करूँगा तुझे ।

(520) तेरह महीनों बाद राम सीता का मिलन, हुआ था कनक भवन में
मानो चौदह वर्ष के पंख लिए, स्वर्ग उतर आया था धरती में
बोले राम, जुदाई की वेदना सहते पूर्ण करना था कर्त्तव्य वन में
मानो गुरुदक्षिणा दी विश्वामित्र को,संतोष मिला रावण के संहार में ।

(521) बोली सीता, मैं भी जिंदा थी, आपके विश्वास से शक्ति पाकर
प्रत्युत्तर दिया राम ने, वरन मैं भी न जी पाता इस धरा पर
फिर क्यों रखी थी अग्नि परीक्षा, मासूम सीता बोली हँस कर
जानता हूँ,हो तुम जल सी निर्मल,हिम सी धवल बोले राम,हँस कर ।

(522) चाहता था बढ़े और तुम्हारा सम्मान, इस अखंड जगत् में
इसलिए स्वीकारी अग्निपरीक्षा हमारी कीर्ति की बढ़ोतरी में
अब आ गयी हो अपनों के बीच, उबरी तुम सब दुःखों से
किंतु वन का जीवन और पवित्रता धूमिल न होती नयनों से ।

(523) व्यस्त हो गए राम तीनों भाई संग, राज काज जनकल्याण में
जात-पात, भेद-भाव हटा भाइचारे की भावना बुलन्द करने में
धनिक-गरीब, शेर-बकरी की तरह पीते थे जल एक घाट से
कटिबद्ध थे राम, जनता को और सुरक्षित रखने अवध में ।

(524) न दे पाते समय सीता को,कभी-कभी स्वयं से सवाल थे करते
राज काज की जिम्मेदारी में, हर दुर्लभ काम वे स्वीकारते
शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, सिंचाई हर क्षेत्र का अवलोकन करते
सबका दर्द, सबकी रक्षा, स्वयं में समाहित कर समाधान करते ।

(525) नियम, अनुशासन, सुरक्षा सबके लिए थे , एक समान
मेहनती का सम्मान, शोषण करने वालों का न था, नामो निशान
भाई चारे की प्रधानता में, जातिवाद की न थी पहचान
थी शांति, किंतु खुद के लिए समय न निकाल पाते थे राम ।

(526) एक दिन इन्हीं व्यस्तताओं मध्य सीता ने, शुभ समाचार सुनाया
झूमे राम पिता बनने का आवेश, खुशियों का अम्बार था लाया
रघुवंश परम्परा बढ़ाने का संतोष, मानो पलकों में समाया
अपूर्व स्नेह प्रेम की गंगा, सीता ने पति के नैनों में पाया ।

(527) हर्षित राम बोले, सीते मांगो आज , कुछ भी तुम
मेरे मन, प्राण, वंश राज्य को निहाल करने वाली तुम
सकुचाती सीता बोली, हूँ उत्सुक वनों का पुनः करने दर्शन
रमणीय दृश्य,पशु, पक्षी, फूल,काग पवित्र नदियों का सरगम ।

(528) इधर राज्य में सुरक्षा हेतु फैले थे ,प्रभु राम के गुप्तचर चहूँ ओर
थी आज्ञा उन्हें महाराजा से, सुनने सबकी व्यथा वगैर किए शोर
एक धोबी-धोबिन की लड़ाई में, राम नाम का था बड़ा जोर
कहाँ थी रात भर?धोबी ने धोबिन से पूछा, आयी जब हुई भोर ।

(529) नहीं मैं राम, जो अपनाऊँ परपुरुष के घर रही, पत्नी को
खुद से दूर , परदेश में दिन रात गुजारने वाली भार्या को
हो तुम पतिता, राम राज्य के बहाने ,दांव पर रखती सतीत्व को
नहीं अपना सकता ऐसी कुलटा,पर पुरुष मैत्री रखने वाली नारी को ।

(530) हर रोज पूछते थे राम, हर दिशा में भेजे गए गुप्तचरों से
कहीं दु:ख कष्ट तो नहीं, प्रजा को जाने अनजाने मुझसे
कहा एक दिन दुर्मुख गुप्तचर ने, एक धोबी है अप्रसन्न आप से
नहीं अपनाता, रातभर बाहर रही पत्नी को,आपके नाम की दुहाई दे ।

(531) अन्य स्त्रियों संग गई थी, उसकी पत्नी भी कहीं मेले में
किंतु लौटने पर धोबी को कालिख दिखी, अपनी ही पत्नी में
बोले नहीं मैं राम जिसे दिखे प्रेम, तेरह महीने बाहर रही पत्नी में
नहीं अपना सकता तुम्हें ,वे बड़े लोग, मुझे रहना इसी समाज में ।

(532) सोचा श्री राम ने, अगर प्रजा में मेरे प्रति है यह धारणा !
तो है यह विचारणीय प्रश्न , होगा इसे भी मुझे समझना
दुर्मुख ने अनजाने कहा,जो सुना, बोला, न लीजिए इसे आप अन्यथा
किंतु राम के दिल में चुभी थी, उनके प्रति प्रजा की ये मनोव्यथा ।

(533) दूजे दिन बुला भेजा राम ने लक्ष्मण को देर रात में
आश्चर्य में थे लक्ष्मण, हुआ क्या भला ऐसी रात में
दु:ख में डूबे राम ने कहा, हूँ बड़ी असमंजसता में
धर्म संकट में पड़ गया, हूँ मैं आज बड़ी दुविधा में ।

(534) कह डाली दुर्मुख की सारी कहानी, लक्ष्मण से अवधकुमार श्री राम ने
कहा सीता के निष्पाप निर्मल चरित्र पर, शंका है अवधवासियों में
अवध राजसिंहासन पर बैठे राजा की मार्यादा पर, प्रश्न चिह्न है उनमें
हूँ विवश मेरे भाई, सीता की पवित्रता को ले प्रजा की शंका में ।

(535) अग्नि से भी पवित्र, माँ समान भाभी पर लांछन! बोले लक्ष्मण गरज कर
जल से निर्मल आकाश से उच्च चरित्र वाली पर संदेह ! आखिर क्यूं कर
भून डालूँगा पूरी अवध, ऐसे बोलने वालों की लम्बी जुबान,काट कर
रख दूंगा अंगारे, मेरी सती भाभी के लिए , ऐसी जुबान बोलने वालों पर ।

(536) मुझे भी हुआ था दु:ख , प्रजा की बेतुकी बातों को सुनकर
सीता पर लांछन ! है मानो अग्नि का लांछन ! बोले राम तड़प कर
यह तो ऐसा, जैसे कोई नासमझ करे संदेह, अपनी ही माँ पर
कैसे रोकूँ , क्या अस्त्र है मेरे पास ऐसी जुबां बोलने वालों पर ।

(537) बोले लक्ष्मण हर जुबां पर कील ठोंक दूँगा मैं, सच कहता भैया
कहा राम ने,अवध के पवित्र सिंहासन पर विराजमान राजा का कर्तव्य क्या ?
जिसने की घोषणा, नहीं है अंतर किसी में, हैं सब समान राजा या प्रजा
बोले लक्ष्मण, ऐसे लांछन सुनने से अच्छा है, आत्म हत्या कर लेना ।

(538) गरजकर बोले लक्ष्मण, ऐसे सिंहासन को मैं ख़डे-खड़े ठोकर मारता
बोले राम नहीं है प्रश्न सिंहासन, अथवा सीता की प्रतिष्ठा का
प्रश्न है, सीता के चरित्र पर उठी, आशंका निर्मूल करने का
हूँ तैयार मैं, भले इसमें प्रश्न हो मेरी प्राणप्रिया सीता के, त्याग का ।

(539) जानता हूँ बोले राम, होगा यह अपराध मेरा सीता के प्रति
उसके गर्भस्थ शिशु , उसकी पवित्रता उसके सतीत्व के प्रति
सिंहासन मर्यादा हेतु करूँगा जघन्य अपराध, जानकर भी सीता है सती
सीता आजन्म रहे वनवासी,न कोई सम्पर्क, होगा न्याय तब, सिंहासन प्रति ।

(540) गर्भस्थ शिशु! बोले सौमित्र इतना अनर्थ!नहीं सुख भाभी के भाग्य में आजन्म
नहीं कहे कोई अपशब्द आपको भैया, किन्तु लगता है भूलूँगा आज सब
दिया हमेशा मान आपको, लगे भूल से हो जाएगा अपमान अब
टूट जाएगी हर सीमा, बंधा है जिसमें आपका मान आज तक ।

(541) ऐसे शब्दों का प्रयोग मत करो, तड़पकर बोल उठे राम
तुम्हारे ये कहने से जीने का क्या अर्थ रहेगा, बेचैन हो बोले राम
सोचो सीता के त्याग के बाद, कितना बचेगा खुद में ही राम
मेरी जीवन सम्पदा का हुआ नाश शेष जीवन में, हृदय से रोए राम ।

(542) बोले लक्ष्मण क्या आप वही हैं,जिसने अहिल्या को पुनः मान्यता दी
जनता की परवाह किए बगैर, उसे सामाजिक प्रतिष्ठा दी
सीता के लिए भाई-बंधु-पुत्र सहित रावण की हत्या की
मर्यादा के खातिर उसका त्याग!जिसने सबके समक्ष अग्नि परीक्षा दी ।

(543) मर्यादा पुरुषोत्तम राम थे अडिग प्रजा की खातिर, संकल्प पर तत्पर
बोले लक्ष्मण से, छोड़ आओ सीता को तमसा नदी के तट पर
रह लेगी वो वहाँ सुरक्षित बाल्मीकि ऋषि के आश्रम पर
निर्णय मेरा अभी न कहना, सुनाना उसे वहाँ छोड़ कर ।

(544) बोले लक्ष्मण, क्षमा करें भैया, ले न पाऊँगा मैं ऐसा कदम
परम पूज्य माँ समान भाभी जनकनन्दिनी से इतना बड़ा छल
कैसे बनूं पत्थर दिल भैया, भाभी को छोड़, लू वापसी के कदम
बोले राम , नहीं है यह प्रार्थना, इसे मेरा आदेश ही समझना तुम ।

(545) आदेश ! कांपते रुंधे स्वर से बोले लक्ष्मण कैसा निर्णय ये !
उसी उधेड़बुन में पहुँचे सीता के महल में वे
देखते ही उन्हें उतावली, आनन्दित सीता बोली हर्ष से
तुम्हें मुझे वन दर्शन कराने को भेजा, तुम्हारे भैया ने ।

(546) आज बनी सीता,फिर से उन्मुक्त चिड़िया सुनसान नीरव नदी तट पर
सौम्य पहाड़, खामोशी उगाते निर्झरों के पास प्रकृतिमय हो कर
पीपल की छांव, यज्ञकुंड हवन के धुँए, सुवासित पवित्र धरा पर
सौन्दर्य की पराकाष्ठा, भोर की भव्य रमणीयता के दर्शन पुनः पाकर ।

(547) किंतु लक्ष्मण तुम दिखते, अस्थिर से अनमने बोली सीता
नहीं लुभाते तुम्हें ये नदी, पहाड़, झरने मौन में बिखरी सुन्दरता
तुम क्यों हो इतने व्याकुल, मलिन, उदास बताओ भला
तुम्हारी चुप्पी खामोशी मुझे भी विचलित कर देगी भैया ।

(548) व्याकुल लक्ष्मण दिशाहीन से, सूखे वृक्ष की भांति, डगमगा गए
बोलूं तो कैसे बोलूं, शब्द ही मानो उन्हें चिढ़ा गए
शब्दों की जगह आँसू ने ली, और भाभी समक्ष फफक पड़े
घंटों को पल में बांधने वाले, आज पल से ही हार गए ।

(549) अब सीता भी हो चिंतित बोली ये क्या हाल किया
बोलो कुछ तो बोलो, किसने तुम्हें इतना मजबूर किया
हिम्मत कर बोले लक्ष्मण, भाभी भैया ने . . . . हाँ भैया !
हाँ भाभी . .कैसे कहूँ ? भैया ने . . .आपका त्याग किया ।

(550) आजीवन वन में रहने का आदेश दे मुझे है यहाँ भेजा
आर्य, मेरे आर्य ! अविश्वास सी बोली, ऐसा नहीं हो सकता
बोले लक्ष्मण, मैं ने इसका घनघोर विरोध भी किया
बाल्मीकि आश्रम में आपको छोड़ने का निर्णय, भैया ने लिया ।

(551) मेरा त्याग ! समझ नहीं पा रही थी सीता, क्यों करेंगे वे ऐसा !
आखिर मैं ने क्या किया ऐसा जिसकी देंगें वे मुझे सजा
बोले लक्ष्मण आपने कुछ नहीं किया, भाभी आप निर्दोष हैं सर्वदा
ग्यारह महीने लंका रहने के कारण,अवधवायिों ने आप पर,की शंका ।

(552) शंका ! हाँ भाभी, आपके चरित्र पर उन्होंने संदेह किया
मेरे चरित्र पर ! अग्नि परीक्षा बाद भी ऐसे प्रश्न, बोली सीता
किंतु ये सब यहाँ क्यों ? मुझे पहले क्यों न अवगत कराया
मैं कैसे रही, क्या हुआ, क्या मेरे नाथ को कुछ भी नहीं पता ।

(553) किसी ने कुछ कहा भी तो, उनका अपना नहीं है विवेक
अपहरण में मेरे हाथ सिवाय कभी रावण ने, न किया मेरा स्पर्श
सब जानकर भी सिंहासन की खातिर कर रहे पत्नी का त्याग
सिंहासन ने बेची विवेक की सम्पति, सतीत्व में लगायी आग !

(554) मुझमें विश्वास रख, आर्य स्वयं हिम्मत करते बात कहने की
मेरा परित्याग ! मुझे निरीह जंगल में, यूं अकेले छोड़ने की
अन्तिम बार मैं अपने आँसूओं से, उनका पग तो पखारती
सब माताओं से मिल, बहनों से विदाई ले यहाँ पर आती ।

(555) भैया को डर था, बोले लक्ष्मण, अपनी दुर्बलता पर
हालत आपकी देख डगमगा जाते शायद, स्वयं अपने निर्णय पर
जाने न देती माताएँ, अडिग हो जातीं भैया के, कठोर फैसले पर
प्राण देकर भी न आने देती, भनक जो मिलता इस आदेश पर ।

(556) अब तो सीता के दु:खों का न था पार, हुआ वो अपरम्पार
क्षोभ, दु:ख, विश्वास , आस्था ने लिया था अश्रु का आकार
मेरे त्याग के सिवाय कोई भी विकल्प न बचा था आर्य के पास
फिर बाल्मीकि आश्रम क्यों?छोड़ दो घने जंगल में कहीं भी आज ।

(557) अच्छा है, जो जंगली जानवर खा लें , मुझे आज
इतनी भी रहमत क्यों ? जब उन्होंने दिया मुझे वनवास
सिसकती रही सीता, अविश्वास का गिरा था पहाड़
नारी की न अस्मिता, न सम्मान, बस अपमान ही अपमान ।

(558) बोले लक्ष्मण, उन्हें है आपकी पवित्रता का, पूर्ण सम्मान
किंतु व्यक्तिगत हित से ज्यादा,सिंहासन की मर्यादा का है मान
लोकापवाद के भय से मजबूर, इस निर्णय पर वे आज
किंतु है उनकी प्रतिज्ञा,मन से हर क्षण आपके हैं ,थे,रहेंगे सदा ।

(559) राजधर्म निभाने की खातिर,कभी दूसरी पत्नी का भी हो भी गर विधान
है उनकी प्रतिज्ञा ,दे देंगे प्राण, पर न देंगे किसी को आपका स्थान
तन मन धन से,आपकी की पूजा,जीवनोपरान्त आप में बसेंगे उनके प्राण
संसार का भले करें त्याग, रहेंगे आपके ही, संग आप ही का होगा नाम ।

(560) आँसुओं की धार से लक्ष्मण भीगे, इधर सीता मैया भीगी
कैसा वार्त्तालाप ! जिसमें थी सिर्फ संवेदना बहती बहती
काश मुझ पर करते वे विश्वास, फिर भी बोली वैदेही
लोकापवाद, आदर्शों की खातिर, मैं उनको सदा समर्पित रहती ।

(561) मैं नहीं थी इतनी दुर्बल , काश मुझे वे समझ पाते
अब मुझे छोड़ दो यहीं भैया लक्ष्मण, आप वापस जाते जाते
रोते-रोते लक्ष्मण थे बेहाल, किया प्रणाम देवी को विदा लेते
यह कैसा था वियोग ! न्याय में अन्याय छिपते छिपाते ।

(562) बाल्मीकि के शिष्य गुरुदेव के पास आए, याचना ले कर
एक अति सुन्दर राजरानी सी नारी, दिखी रोती तमसा तट पर
जिज्ञासावश बाल्मीकि चले, देखा करुणा का रूप तट पर
सुन उसका रुदन बोले मुनिवर,दु:खों से घिरी,कैसे आयी यहाँ पर ।

(563) लगता है , तुम हो दुनिया की सबसे दुखियारी नारी
तुम्हारा दर्दनाक रुदन , दिल को दर्द से करता भारी
मुझे पिता तुल्य मान बताओ, अपनी विपदा सारी
रोने से होगा न हल सुनाओ, हमें बेझिझक अपनी कहानी ।

(564) ऋषिवर, हूँ संसार की अनोखी अभागिन, नाम है दु:ख मेरा
सब कुछ होते हुए भी आज कुछ नहीं है मेरा
सर्वस्व वाली हो कर भी, सर्वस्व विहीन संसार है मेरा
बोले ऋषिवर स्पष्ट करो कहाँ से आयी? कौन सा संसार तेरा?

(565) बोली सीता फिर भी झिझकते, पिता तुल्य नहीं, आप पिता ही दिखते
मुझ अभागिन को इस वन में पिता मिले, यह आधार है सबसे बढ़के
घनघोर निराशा मध्य आपके दो बोल, आशा की किरण से लगते
फिर भी एक टूटी मरी सी नारी, क्या बताए अंबार अपने दु:खों के ।

(566) बोले ऋषिवर, सत्य बताने से, कम न होगा पतिव्रत धर्म तुम्हारा
कहा सीता ने क्या सत्य?क्या पतिव्रत धर्म?शायद कुछ नहीं है मेरा
अग्नि परीक्षा देकर भी सत्य प्रमाणित न हुआ, ये कैसी है परीक्षा
क्या प्रमाण ! क्या सत्य! श्रेयस्कर है मेरे प्राणों को न्योछावर करना ।

(567) बोले ऋषिवर, हो तुम बहुत दु:खी चलो, हमारे आश्रम में
बेखटक आओ, रखूंगा तुम्हें वनवासी स्त्रियों के संग में
बोली सीता, नही ऋषिवर यही मरूँगी मैं समाधि लगा के
जब उन्होंने ही छोड़ दिया,नहीं कोई उम्मीद अब इस जीवन में ।

(568) समझाया बाल्मीकि ने, नहीं है अधिकार तुम्हें जीवन लेने का
ये नहीं है रास्ता, हमें जीवन को है संभालना और संवारना
बोली वैदेही, बिना उद्देश्य इस जीवन का अब क्या करना
बोले मुनिवर, तुम्हारा परिचय पा, मूल्यांकन कर पाऊँगा इसका ।

(569) हूँ मैं, जनक नरेश की पुत्री, राजा राम की व्याहता
बोले ऋषिवर, बाकी सारी कथा मैं बखूबी हूँ जानता
श्री राम के लंका जीतने के बाद, भय था मुझे इसी बात का
युग के सबसे बड़े धर्मात्मा,कहीं त्यागे न पत्नी,और यही घटा !

(570) बोल ऋषिवर, मेरा तप,मेरी तपस्या इस बात को नहीं स्वीकारती
प्राणों से भी ज्यादा है प्रेम तुम्हारे प्रति,तुम बिन उन्हें नहीं शांति
लोक अपयश, लोक अपवाद,भावनाओं की आशंका मुझे भी थी
वही हुआ जिसका अनुमान तप से जान लिया था मैंने पहले ही ।

ऋषि वाल्मीकि रामायण लिखते हुए

(571) किंतु मेरा दोष ! बोली सीता, प्रेम करने वाले, क्या ऐसा त्याग हैं करते
बोले ऋषि, सुख ही सुख नहीं जीवन, होता बाधाओं का सामना करके
आखिर कुछ सोचकर ही, राम ने मेरे आश्रम समीप छोड़वाया तुम्हें
अब जब तुमने मुझे पिता है कहा, ले चलूँ तुम्हारे पितृगृह में तुम्हें ।

(572) किंतु सीता थी अडिग, किसके लिए जीऊँ अब कौन है मेरा !
पिता का घर छोड़, पति के घर आयी, जान सर्वस्व यही है मेरा
अब बगैर उद्देश्य, संबंध के जीवन, मरण तुल्य हुआ है मेरा
पति ही पिता, भाई, मित्र, सखा, अपना-पराया होता है सबका ।

(573) बोले वशिष्ट, हो तुम सगर्भा, इतना काफी नहीं , क्या जीने के लिए
रघुकुल की धरोहर पृथ्वी में लाना, जिंदा रहना होगा उनके लिए
हाँ बोली सीता, है यह अपराध मेरे गर्भ में, जीना इसके लिए !
नहीं अपराध बेटी, बोले ऋषिवर, तुम्हें जीना ही होगा इनके लिए ।

(574) तुरन्त ही संयमित बन सीता बोली, संबंध नहीं उनसे ! ऐसे कैसे!
वे मेरे आराध्य, मेरे प्राणधन, उनका पौरुष है मेरे गर्भ में
आवेश में तमसा नदी पर, जीवन समाप्त का ख्याल आया मुझ में
मैं भूली कैसे!लक्ष्मण ने जतायी थी,उनकी विवशता,मर्यादा पालन में ।

(575) बोले मुनिवर, असंयमित होना है स्वाभाविक क्रोध में
है अगाध प्रीति तुमसे उन्हें, नहीं तो युद्ध रावण से क्यूं करते
आश्रम में आकर फल-फूल ग्रहण कर सोचो धीरज से
बोली सीता, अब आप ही हैं पिता मेरे, बेटी जो माना आपने ।

(576) अब भी अस्वस्थ सीता! सब पर न्याय करने वाले,मुझे न्याय न दे पाए
बोले ऋषिवर, है यह रामराज्य, यदि राजपद भी छोड़ दें तुम्हारे लिए
होंगे और कमजोर , नहीं दे पाएंगे बेदाग चरित्र अवधवासियों के लिए
यह व्यक्तिगत त्याग, हर अर्थ में है महान, राम राज्य के लिए ।

(577) ठीक है बोली सीता, मान भी लूं यह बात, किन्तु मेरा अधिकार
कुछ भी नहीं, एक पत्नी के प्रति, उनके दायित्व का भार
मेरे सामने खुल कर भी बता नही सके ,अपने मन की बात
मैं उनके चरण छू, आ सकती थी लेकर माताओं का आशीर्वाद ।

(578) कहा वनवासी रिताश्री ने, इसके कथन में है सार्थकता
त्यागना ही था, तो घर से ही इसको करते विदा
बोले गुरुदेव, जानकर क्या रह पाती सीता जिन्दा
तब बात बदल न जाती, नहीं ले रहा मैं पक्ष राजा का ।

(579) सीता थी अब तक उदास, मुझे नहीं राजा को दीजिए आशीर्वाद
सुखी रहें वे प्रजा संग, मान्य हो जनता मध्य उनका अधिकार
पुनः समझाने मन बदलने ले गए मुनि, उसे मृगशावकों के पास
कितने सारे बच्चे, इनसे खेलो, देखो, सृष्टि का अनुपम उपहार !

(580) उसी आश्रम में जन्म दिया सीता ने दो सुन्दर शिशुओं को
दिया आशीर्वाद गुरु ने रहो अजेय,शक्तिशाली,बढ़ाओ माँ के सुख को
पुनः बोली सीता,जो जन्मते कनक भवन में, जगमगाते सारे भवन को
आनन्द ही आनन्द होता,चाचा-चाची,दादी,नगरवासी लुटाते खुशियों को ।

(581) और यहाँ देखो बोले ऋषिवर, सारा वन खुशियों से, है चहक रहा
पर्वत लगे मुस्कुराने, नदी हिलोरने, चिड़ियों से, सारा वृक्ष चहचहा उठा
देखा डाल -डाल, पात - पात, हर्ष विभोर बन झूम नाच उठा
कण-कण में खुशी, सारा वातावरण आज संगीतमय बन उठा ।

(582) किया, उसी समय नामकरण, लव और कुश गुरुदेव ने
इतना सुन्दर नाम ! गौरवान्वित थी ममता खिलती धूप में
माता आनन्दित, देख अपने प्राण, सुन्दर पुत्रों के रूप में
बाल्मीकि बने दादा , ये फूल प्रतिभा बिखेरेंगे इसी आश्रम में ।

(583) सीतामय राम संलग्न थे राजकाज में, फिर भी कितने आधे अधूरे
राम राज्य या स्वराज्य, सुखी थी जनता, राज्य में खुशियाँ समेटे हुए
काश होता मैं साधारण मानव, होती सीता मेरे पास, हर दिन विचारते
उनके सुख दु:ख में साथ थे लक्ष्मण,थे दोनों भाई एक दूजे के सहारे ।

(584) पिता दिल बोलता कई बार, कैसी होगी मेरी सीता
बेटा हुआ या बेटी काश मैं ये तक जान पाता
इन्हीं आशंकाओं मध्य हुए एकाकी, कोई नहीं था जानता
अत: खपाते खुद को राजकाज में,दिल में थी सिर्फ सीता ।

(585) सीता त्यागने के निर्णय से दु:खी है प्रजा,बोले सुमंत महाराज से
रो रहा सर पटक-पटक कर वो धोबी, राजमहल के दरवाजे में
नहीं जानता था होगा यह परिणाम, उसकी कोरी नासमझी में
वो तो था मजाक, समझे बगैर कहा था उसकी छोटी बुद्धि ने ।

वाल्मीकि आश्रम में,लव-कुश माता सीता के संग

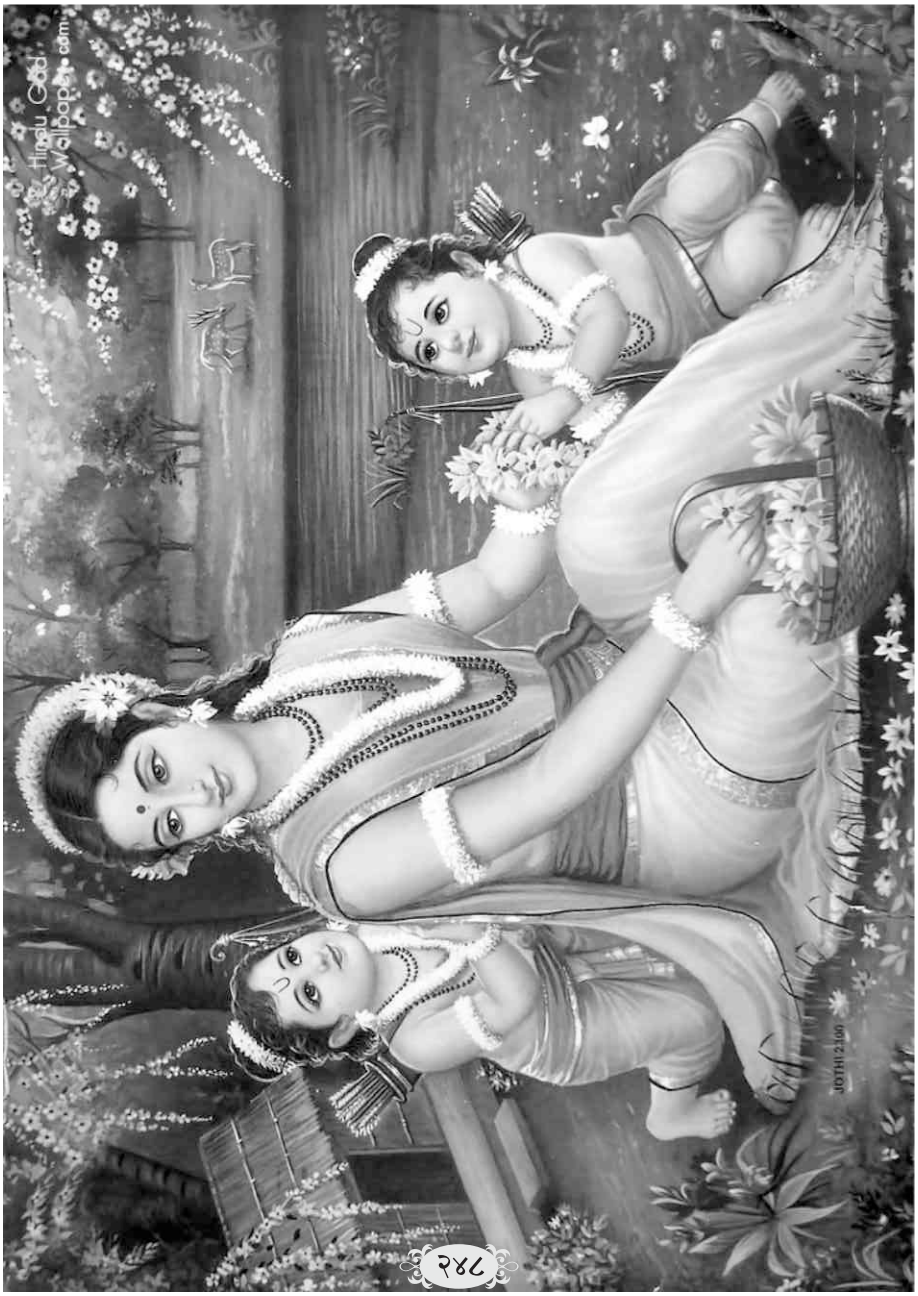

(586) कहा राम ने, मेरा हर निर्णय होता है सोच समझ के
धोबी भले भूले, लिया मैं ने उसे,जनभावना के रूप में
मजाक भी उपजता है, मन की भावनाओं ही से
नहीं मैं वो राजनेता,विचार बदले जिसके समय की धारा से ।

(587) मुझे नहीं पश्चाताप, अपने द्वारा लिए गए निर्णय पर
हाँ पश्चाताप है मुझे, अपने राजकुल में पैदा होने पर
पश्चाताप है , सीता के लिए ,अपने अथाह प्यार पर
राजकुल जन्म के खातिर त्यागे, अपने असीमित प्रेम पर ।

(588) लव-कुश हो रहे थे पारंगत आश्रम में, विविध विद्या के क्षेत्र में
तीर चलाना, नीति, धर्म, विद्या का नित पाठ,गुरुदेव की छत्रछाया में
संसार और मानवता का पाठ, सीख रहे थे माता के चरणों में
सीता,आश्वस्त देख बच्चों के बढ़ते कदम उज्ज्वल,कीर्तिपूर्ण दिशा में ।

(589) ब्रह्ममुहूर्त्त से सोने तक, आश्रम में निर्धारित था हर काम
पेड़-पौधे, वन-प्राणी, पशु-पक्षियों में था उनका धाम
वन का रमणीय वातावरण, तमसा नदी का स्नान
आनन्दित रहते थे लव-कुश, हर दिन सुबह-शाम ।

(590) चल रहा था अति सुरुचिपूर्ण राम राज्य, अवध में
कानून सुरक्षा व्यवसाय , थे भरत के जिम्मे में
राजस्व, राजपथ, सिंचाई, शिक्षा थे शत्रुघ्न के हिस्से में
जन-सुरक्षा, राष्ट्र-सुरक्षा थे लक्ष्मण के जिम्मे में ।

(591) चौकन्ने रहते थे सदा राम, लेकर प्रश्न अवधवासियों के
सबके काम थे संतोषजनक, उत्तर हर प्रश्न के, सबके पास थे
लक्ष्मण के जिम्मे ,जनता के प्रश्न, जहाँ वे अक्सर निरुत्तर थे
बार-बार वैदेही के बारे पूछना, क्यूँ त्यागा था राम ने उन्हें ।

(592) क्यों नहीं कहा,जनता के कहने पर त्यागा वैदेही को, बोले श्री राम
वह धोबी जिसने कहा था, बोले लक्ष्मण ,रो-रोकर हो रहा बेहाल
विचार किया राम ने, कहीं इस निर्णय से तो हुआ नहीं अनर्थ
जो निर्णय जनता को नहीं मान्य,बन जाता राज्य के लिए पाप सम ।

(593) करना चाहता राजसूय यज्ञ, प्रायश्चित के खातिर, बोले राम, लक्ष्मण से
बगैर लड़े, शांति मित्रता का संदेश, पहुँचाना चाहता हर राज्य में
थी भाईयों की सहमति, दक्षिणापंथ में सुग्रीव, विभीषण थे सब साथ में
संपूर्ण आर्यावर्त में, अन्याय, अनीति के खिलाफ छोड़ें अश्व, विश्व में ।

(594) जो भी हो असहमत,दे कर चुनौती, पकड़ेगा वो हमारा भेजा ये अश्व
जो करेगा परास्त, बंधा अश्व खोलेगा , जिसे कहते अश्वमेघ यज्ञ
क्योंकि है यह सीता के प्रति हुए अन्याय, अनीति, चुनौती का विषय
तर्क अथवा युद्ध होगा,एकमात्र विकल्प,अतः चुनना होगा उचित अश्व ।

(595) कहा श्री राम ने गुरुदेव वशिष्ठ से, करना चाहता मैं अश्वमेघ यज्ञ
अनीति तो नहीं की आपने महाराज ,अथवा किया कहीं गलत न्याय
बोले प्रभु, करना चाहता मैं प्रायश्चित, किया जो सीता के प्रति अन्याय
शास्त्रानुसार करने की आज्ञा दी गुरुदेव ने, सही विधि-विधान के साथ ।

(596) यज्ञ में भार्या का वामांग में होना, बोले मुनिवर, है अनिवार्य बेटे राम
हुए सहमत भरत, लक्ष्मण भैया संग,भाभी को वापस ले आते,अभी हम
नकारा राम ने,नहीं आएगी सीता,त्याग करते समय का था मेरा संकल्प
बोले गुरुदेव,दूजा व्याह है विकल्प,जो यज्ञ के लिए हो आप कृतसंकल्प ।

(597) कहा राम ने, जिस अन्याय के खातिर यह यज्ञ, उसी के लिए दूजा व्याह !
है यह विधि भले यज्ञ की, नहीं त्यागा था सीता को, कि करूँ दूजा व्याह
बोले गुरु राजा के लिए है विधान अनेक , किए दशरथ ने भी तीन व्याह
भले उन्होंने किए बोले राम, मैं ने किया है केवल अपनी वैदेही से व्याह ।

(598) यदि यज्ञ के लिए व्याह है जरूरी, तो नहीं ये मुझे है करना
सोचूँगा अपनी सीमा में, विकल्प का आधार,कोई और दूजा
बोले गुरुवर,सीता की जगह रख सकते सोने की, उसकी प्रतिमा
सशरीर हू-ब-हू जो दीखे पूर्णतः आपकी जनक नन्दिनी सीता ।

(599) निश्चित हुई तारीख, यज्ञ-स्थान,यज्ञ मंडप स्थापना की प्रारम्भिक रचना
स्थल था नैमिषारण्य गोमती तट, थी जिसकी अपनी नैसर्गिक सुन्दरता
हुई आमंत्रित अतिथिगण,ऋषिगण, राजाओं के रहने की उचित व्यवस्था
थे मुख्यतः महाराज सुग्रीव, विभीषण, लंकाजयी मित्र, मंदोदरी राजमाता ।

(600) यज्ञ सफलता हेतु भरत,शत्रुघन,लक्ष्मण तीनों भाई हुए,व्यस्त उत्तरदायित्व निभाने में
लाए समाचार भरत, दो बालक शिष्यों संग पधारे बाल्मीकि यज्ञ उत्सव में
बोले राम, करें उन तीनों की उचित व्यवस्था,न रहे कोई कसर बाकी सत्कार में
समझा कर लाए थे गुरुदेव, लव-कुश को, हर बात रामायण के संदर्भ में ।

(601) हिदायतें दी मुनिवर ने,लेना आहार फलों से,प्यास बुझाना गोमती जल से
याद है तुम्हे वीणा के तारों की बारीकी, कण्ठस्थ तुम्हें छंद रामायण के
रोज-रोज गाना रामायण, अवध के हर गली, हर टीले, राजभवन द्वारे में
रामायण का सूर संगीत दो बालकों से सुन,अद्‌भुत विस्मय था अवध में ।

(602) गा रहे थे लव-कुश कथा सुनाते हैं हम अवध राजा राम की क्या सुनाते हैं

तोड़ा धनुष, व्याही जानकी जो थी
आँखों का तारा महाराज जनक की
लाडो में थी वो पली, व्याहता बन
पति का साथ निभाने वन को चली
राजसुख छोड़ चौदह वर्ष वन्य जीवन जीने,
सतीत्व के रगों में थी वो खिली
उसी जनक नन्दिनी की दु:ख व्यथा,
राजा राम की विरह कथा सुनाते हैं
हम उसी विरहनी सीता-राम के प्रेम-वेदना की,
शिला का आधार दिखाते हैं
राजा राम की कथा सुनाते हैं . . . .

(603) मधुर ध्वनि राम ने सुनी, सारे नगर में, लव-कुश जो सुना रहे थे कथा
उत्सुकता वश बुलवाया,हुए मोहित देख उनका रूप, सुनकर अपनी ही व्यथा
किस सौभाग्यशाली माँ के हो पुत्र?कौन तुम्हारे पिता?कौन छंदों के रचनाकार?
बोले दोनों,हैं हम आश्रमवासी,बाल्मीकि जी के शिष्य,वही इस रचना के पिता ।

(604) बातों से बालकों ने जाना, थे ये वही अवधपति राम, जिसकी थी यह कथा
बोले राम,मुनिश्रेष्ठ ने सच मुझ अभागे का दु:ख, परख कर शब्दों में ढाला
बोले बालक निडर बन दु:ख अपना तो, समझ रहे हो सबसे बड़ा निराला !
तुमसे ज्यादा दु:खी थी उर्मिला, पति वियोग चौदह साल जिसने झेला ।

(605) उसकी संकल्प शक्ति,आकांक्षाओं पर जीत,त्याग बढ़कर था आपसे सर्वदा
लक्ष्मण,जिसने आभास न कराया कभी अपने विरह दु:ख का,कभी सोचा?
गए थे आप वन को यूँ ही नहीं, थी वो मात-पिता की आज्ञा
किंतु महान भरत ! स्वेच्छा से साधुमय बन, सारे राजसुखों को त्यागा ।

(606) भरत पत्नी मांडवी, चौदह साल महल में भी, तपस्विनी सम जीवन बिताया
और सीता ! संसार की सबसे दु:खी नारी ! कभी उसके दु:खों को समझा
जनता के सुख की खातिर,सगर्भा स्थिति में दु:ख के सागर में उसे ढकेला
इन सबके सामने आपका दु:ख क्या भला ? बेवाक लव बोलते चला ।

लव-कुश एवं अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा

(607) बोले राम, इसी अन्याय के पश्चाताप में ,यह अश्वमेघ यज्ञ मैं कर रहा
प्रत्युत्तर दिया लव ने, है यह दिखावा,अपने अन्यायों पर डाल रहे हो परदा
जब कोई आकांक्षा ही नहीं, तो फिर छोड़ रहे हो क्यों यज्ञ का घोड़ा
संपूर्ण संसार में जो हो असहमत नीति में, बोले राम,पकड़ सकता यह घोड़ा ।

(608) हुई तैयारी यज्ञ की, छोड़ा गया घोड़ा, हर अलग राज्य, हर दिशा में
बटुकों संग, बाल्मीकि आश्रम समीप, भ्रमण करते देखा घोड़ा,लव-कुश ने
बाल्मीकि रामायण पढ़ते, श्रवण करते पहचाना अवश्मेघ अश्व दोनों ने
नहीं यह साधारण घोड़ों का खेल,समझाना चाहा प्यार से, उन्हें सुमंत्र ने ।

(609) न समझ रहे थे दोनों, थे वे अडिग अश्वमेघ घोड़ा, न छोड़ने में
देखते ही देखते निडर बन करने लगे युद्ध, राम सेना से उसी स्थल में
अपार विस्मय था मंत्री सुमंत्र, लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु की निगाहों में
शब्दों को बोल नहीं, बोल को आवाज नहीं, हैरानी थी अवध सेना में ।

अश्वमेघ घोड़े को पकड़ते लव-कुश

(610) बांधा हनुमान को पेड़ से, शत्रुघ्न बेवस, सेना सारी बालकों समक्ष, थी हारी
पधारना पड़ा श्री राम को, हुए विस्मित सआश्चर्य, शंका उनकी ओर बढ़ी
थी घटना बाल्मीकि आश्रम समीप, अत:स्वत: सीता की छवि आभासित हुई
लव-कुश का तेज, निर्भीकता, ओज, विद्वता ने मानो याद दिलायी सीता की ।

(611) मिलते ही खबर मुनिश्रेष्ठ बाल्मीकि पत्नी अरुणधती संग, पहुंचे युद्ध स्थल में
सोचा सही है वक्त, अवगत कराने , अमृतमय जड़ी बूटी समान सत्य से
सुन हुए हर्षित राम, संतोष आनन्द से ओत-प्रोत, आँखें भरी अनुकम्पा से
मेरे बालकों की जनेता, मेरी सीता है जीवित, जान संभावित सत्य से ।

(612) ऋषिवर की आज्ञा से अरुणधती संग पहुँची थी ,सीता भी वहाँ
हर्ष, प्रेम, उन्माद, आनन्द से भरा दिल, पत्नी प्रेमी ,पति श्री राम का
सारे रघुवंशी, माताएँ, भाई, गुरु, समस्त अवधवासी आनन्दित थे जहाँ
वहीं महाराज राम ने, चाही वैदेही से देने पुन: एक आखरी परीक्षा ।

पृथ्वी में समाती-माता सीता

(613) दे सकती मैं,सौ-सौ परीक्षा किंतु कब तक!अंत नहीं, इसका बोली सीता
यदि मैं ने मन - वचन - कर्म से की सिर्फ अपने पति की आराधना
तो हे भगवती पृथ्वी ! आप मुझे अपनी गोदी में अभी ही समा लेना
सबके देखते महान सती,सतीत्व के आवरण संग, व्यथित पत्नी हुई विदा ।

(614) पृथ्वी में समाने से पूर्व कहा, खरी उतरी मैं, इस परीक्षा में स्वामी
स्वीकारें मेरा अन्तिम प्रणाम , आज मेरे प्रिय , मेरे स्वामी
मेरे बच्चों को पिता संग परिवार मिला, हूँ संतुष्ट मैं स्वामी
रघुवंश दीपक की लौ ,देदीप्यमान रखी,अब इसे स्वीकारो स्वामी ।

(615) न था अब कुछ शेष राम के विरान, विराट राजसी जीवन में
तड़फड़ा रहा था प्रेम संवेदनशील पति का, राजसिंहान के पिंजरे में
उसके कारण उसकी ही अर्धांगिनी, बाध्य हुई वन जीवन जीने में
एक चरित्रवान पतिव्रता नारी से,परीक्षा लेने के सिवाय क्या किया उसने !

(616) भरत को कहा , नहीं रह सकता कनक भवन में सीता बिन
चाहता तुम्हें राज्य भार सौंप, लूं संन्यास , सोचूँ मैं नित दिन
रुआंसे भरत बोले, किस अपराध की सजा होगी ये आप बिन
पहले ही दिया आपने, हम तीनों भाइयों के पुत्रों को राज्य भिन्न-भिन्न ।

(617) बोले राम, हैं वो उनके उपहार , अभी भी है अवध मेरे पास
प्रत्युत्तर दिया भरत ने, अब तो हैं लव-कुश, उनकी भी होगी आस
होंगे जो आप सन्यासी, करूँगा मैं आपकी सेवा, यही है मेरी आस
जो राज्य मुझे देना चाह रहे, दूँगा उसे मैं लव-कुश को, हे भ्रात ।

(618) बोले राम, न करो जिद, मेरे बाद उत्तराधिकारी हो तुम यहाँ
कहा भरत ने, लिया मैं ने राज्य, और लव-कुश बेटों को दे दिया
उत्तरांचल में कुश,दक्षिण में लव,शत्रुघन के प्रथम पुत्र सुबाहू को मथुरा
दूजे पुत्र शत्रुघाती को मिले विदिशा और मेरे पुत्रों में तक्ष को तक्षशिला ।

(619) दूजे पुत्र पुष्कल को पुष्कल,लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु होगा, कारुपथ का राजा
सातो भाई मिल प्रेम संग राज करेंगे,होगा उद्धार देश का,सुखी होगी प्रजा
कुछ समय पश्चात आए, एक मुनि मिलने राम से, करने कुछ गुप्त वार्त्ता
कहा उन्होंने, न हो खलल वार्त्तालाप मध्य, बरतें सावधानी,है यही प्रार्थना ।

(620) कोई न आने पाए यहाँ हिदायतें दी, भ्राता लक्ष्मण से राम ने
गर हुआ प्रविष्ट कोई भी वार्त्ता मध्य, वरण को बाध्य होगा मृत्यु से
हूँ मैं काल, मनुष्य लीला तहत, हुआ पूर्ण कार्य, वार्त्ता मध्य मुनि बोले
चाहें सब देवता, भगवान विष्णु, क्षीर सागर आ कर अपना लोक संभाले ।

(621) भेजा पहले ही से आपने लक्ष्मी को, इंतजार में बैठी वो आप के
कहा राम ने, खोया मैंने खुद को, आकर्षक मनुष्य जन्म पा के
बोले काल, हैं आप प्रभु! किंतु मनुष्य रूप की अवधी है मेरे हाथ में
इतने में पहुँचे दुर्वासा ऋषि, प्रभु से मिलने ,अति आवश्यक काम से ।

(622) कहा लक्ष्मण ने, करें इंतजार, हैं प्रभु व्यस्त एक महत्त्वपूर्ण काम में
तुरंत न मिलने पर समस्त कुल नाश करने की धमकी दी,दुर्वासा ने
समस्त कुल के मरने से अच्छा है मेरे खुद का मरना, विचारा लक्ष्मण ने
और पहुँच गए वहाँ, प्रभु श्री राम बैठे थे जहाँ,काल संग वार्त्तालाप में ।

(623) आश्चर्यचकित राम,देख लक्ष्मण को गुप्त वार्त्ता मघ्य आते, छोड़ अपना काम
बोले लक्ष्मण , दुर्वासा ऋषि चाहते तुरंत मिलना, है उनका महत्त्वपूर्ण काम
वर्षों से भूखे रह हवन करते, आखरी दिन है, उनके तप का आज
चाहते, आपके कर कमलों से, व्रत समापन कर ,भोजन की हो शुरुआत ।

(624) बोले लक्ष्मण, प्रतिज्ञानुसार जा रहा मैं, सरयू तट, मृत्यु आवरण करने
रोकूंगा नहीं बोले राम , प्रथम हुए तुम मुझसे, सरयू समाधि लेने में
तुम्हारे बाद लूँगा मैं समाधि, छोटा भाई बन की सेवा बहुत,इस जन्म में
बड़े भाई बन मेरी सेवा स्वीकार कर, ऋण मुक्त करना अगले जन्म में ।

(625) द्वापर में, बलराम भैया की सेवा की, बहुत निष्ठा से, श्री कृष्ण ने
सरयू करने प्रस्थान, सबसे हाथ जोड़ ली विदाई , मर्यादापुरुषोत्तम राम ने
माताएँ, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव, अवधवासी न रोका किसी को,संग आने में
सिर्फ हनुमान को न दी अनुमति, प्रभु ने,अपने साथ समाधि लेने में ।

(626) बोले प्रभु, हनुमान तुम्हें होगा यहीं रहना, जब तक आदर,भक्ति है पृथ्वी में
निष्ठावान हनुमान, आज भी उपस्थित हैं, हमारी हर भक्ति, हर पूजा में
समस्त प्रकृति, नदी,पहाड़, पृथ्वी,आकाश को किया नतमस्तक प्रणाम प्रभु ने
भाई, माता संग हर्ष -उन्माद के साथ, पहुँचे प्रभु पवित्र सरयू तट में ।

(627) जाते -जाते लिया आशीर्वाद, गुरुदेव का कर नमन, प्रभु श्री राम ने
मर्यादा पुरुषोत्तम की शाख, है आज भी प्रज्ज्वलित, राम राज्य नाम में!
भगवती सीता की अद्‌भुत महिमा,आज भी दर्शित सहनशीलता के आवरण में
भरत-लक्ष्मण की कर्त्तव्यपरायणता, आज भी अवलोकित, हर राम भक्त में ।

जय रघुनन्दन जय सियाराम
पतित पावन सीता राम
जय श्री राम

* * * *

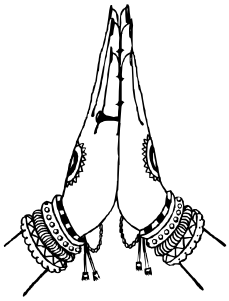

जय श्री रामजी